संभव

जुलाई-दिसम्बर 2021

हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, रामलाल आनंद महाविद्यालय

संघर्ष

● **कंचन**

जन्म से लेकर मृत्यु तक एक संघर्ष चलता है
बेटियों के लिए ये संघर्ष
भ्रूण बनते ही शुरू होता है
भ्रूण बनते ही उन्हें चुनौतियां देखनी पड़ती हैं
वह समाज में आए
यह रूढ़िवादी सोच तय करती है
चुनौती से लिप्त वह समाज में आती है
फिर एक छोटा भ्रूण बालिका बन जाती है
बालिका को चुनौती तब समझ आती है
जब उसके सामने भेदभाव भरी नीति
सामने रखी जाती है
एक नीति नहीं हजार नीति सामने आती हैं
सहम जाती है वो बच्ची जब
उसकी सीमा तय की जाती है
नन्हीं सी चिड़िया खुला आसमान देखती है
बाजों की नजर उसे हमेशा रोकती है
सीमा में रहकर वह हजार सपने देखती है
ये सामाजिक नीतियां उसके पैर खींचती हैं
उड़ने के ख्वाब देख बाजों से डरती है
बिना हिम्मत हारे वह सबसे ऊंचा उड़ती है
एक की पहल से सबमें हिम्मत आई है
अब लड़कियों ने नीतियों के
ऊपर से छलांग लगाई है
गलत कर रही कहने वाले
अब नहीं टोक पाएंगे
अब पाबंदी के ताले
खुद-ब-खुद खुल जाएंगे
संघर्ष की कहानी में
चुनौतियों ने सर झुकाया है
जो लड़के न पा सके
वह लड़की ने पा के दिखाया है।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

महिला पत्रकारों की दुनिया	**राकेश कुमार**	**1**

महिला पत्रकारों पर विशेष

हेमंत कुमारी देवी : पत्रकारिता में भारत की पहली महिला	आरती	2
स्वर्ण कुमारी देवी : उपन्यासकार से पत्रकार बनने तक का सफर	सुधीर जांगिड़	3
विद्या मुंशी : पत्रकारिता के साथ स्त्री अधिकारों की सैनिक	समीरा	4
होमाई व्यारावाला : तस्वीरों के जरिए बनाया इतिहास	श्रुति गोयल	6
सईदा बानो : उर्दू पत्रकारिता की मुखर आवाज	दीपशिखा	7
मृणाल पांडे : देश की पहली महिला मुख्य संपादक	गीतू कत्याल	9
मधु त्रेहन : पत्रकारिता के हर माध्यम को संवारा	विकास त्रिपाठी	10
तवलीन सिंह : राजनीति पर बेबाक चलती कलम	धनंजय कुमार	12
नलिनी सिंह : पत्रकरिता की आंखों देखी	अमर	14
गौरी लंकेश : दुस्साहस और जोखिम भरी पत्रकारिता	मनोज थायत	15
पैट्रिशिया मुखीम : उत्तर पूर्वी राज्यों की प्रतिनिधि पत्रकार	शिव शंकर	16
बानो हरालु : पत्रकारिता के साथ पर्यावरण की सजग प्रहरी	शिल्पी	18
सुचेता दलाल : खोजी पत्रकारिता वाया घोटालों का पर्दाफाश	शिवानी	19
सेवंती नैनन : पत्रकारिता जगत की निगरानी करने वाली पत्रकार	पुष्पेंद्र	20
बरखा दत्त : कारगिल से मोजो तक का सफर	प्रियंका	21
कविता देवी बुंदेलखंडी : ग्रामीण पत्रकारिता की आवाज	प्रियांशु गौतम	23
दयामनी बारला : आंदोलनकारी पत्रकार की बनी पहचान	सुमित	24
कादंबरी मुरली : खेल पत्रकारिता में जमाई धाक	गौतम	26
शैली चोपड़ा : महिलाओं को विश्वास दिलाने का प्रयास	मंटू	27

लेख

मेट्रो की सराहनीय पहल है रेनबो स्टेशन	गीतू कत्याल	28
एक समुदाय के अस्तित्व पर सवाल	विकास त्रिपाठी	29

कविता

संघर्ष	कंचन	फ्रंट इनर
कभी जाकर देखो उन गलियों में!	निहारिका	बैक पेज
हौसला	मीनाक्षी पंत	बैक पेज

संभव

वर्ष : 15 अंक : 2
पूर्णांक–19
जुलाई–दिसम्बर 2021
दिसम्बर 2021 में प्रकाशित

संरक्षक मंडल

प्राचार्य
डॉ. राकेश कुमार गुप्ता

प्रभारी
डॉ. सुभाष चन्द्र डबास

संपादक मंडल

संपादक
डॉ. राकेश कुमार
डॉ. अटल तिवारी

छात्र संपादक
चेतना काला

उप-संपादक
विकास त्रिपाठी, श्रुति गोयल

संपादन सहयोग
अभिषेक उपाध्याय, इमरान

फोटो
इंटरनेट से साभार

संपादकीय पता :
हिंदी, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
रामलाल आनंद महाविद्यालय,
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो जुआरेज़ मार्ग, नई दिल्ली–110021
दूरभाष: 011–24112557
ईमेल : sambhavrla@gmail.com

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
डॉ. राकेश कुमार गुप्ता
द्वारा बेनितो जुआरेज मार्ग
नई दिल्ली–110021 से प्रकाशित
और **यशस्वी प्रिंटर्स,** जी–2/122,
द्वितीय तल, सेक्टर–16, दिल्ली–110089
से मुद्रित

'संभव' में प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, उनसे संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय

महिला पत्रकारों की दुनिया

दुनिया को देखने का नज़रिया सत्ता व्यवस्था पर काबिज़ शक्तियों से हमेशा से प्रभावित होता रहा है। यानी दुनिया जैसी दिखाई देती है वैसी होती नहीं। उसके होने और बनने की प्रक्रिया में हमेशा से सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक व्यवस्थाओं में दिखाई न देने वाली परंतु प्रभावशाली शक्तियां तय करती हैं कि दुनिया कैसी बनेगी। इसका प्रमाण है कि हमारी दुनिया में स्त्री और पुरुष के बीच बंटवारा मात्र संसाधनों के बीच ही नहीं हुआ अपितु छवियों के बीच भी हुआ है। पुरुष की छवि को तमाम बड़े विचारों और शक्ति केंद्रों से जोड़ा गया तो स्त्री को कोमल बताकर शक्ति केंद्रों और संसाधनों से दूर रखा गया। पुरुष वर्चस्ववादी इस विचार का प्रभाव पत्रकारिता के क्षेत्र पर भी जहां यह माना गया कि पत्रकारिता पुरुषों का डोमेन है। इसलिए पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने वाली महिला पत्रकारों को उतना सम्मान नहीं मिला जितने सम्मान की वे हक़दार थीं। सम्भव पत्रिका के इस अंक में हमने प्रयास किया है कि पत्रकारिता के क्षेत्र में काम कर रही महिलाओं के योगदान को रेखांकित किया जाए।

इन सभी महिला पत्रकारों ने हमारे समय के प्रचलित मुहावरों को बदला है। स्त्री जीवन के संघर्ष से लेकर वैश्विक राजनीतिक, संस्कृति से लेकर युद्धों तक, विज्ञान से लेकर पर्यावरण तक और संगीत से लेकर चुनावों तक को इन महिला पत्रकारों ने कवर किया और अपनी छाप छोड़ी है। जैसा कि हम पहले ही कह कर आए कि अक्सर महिलाओं को किसी भी क्षेत्र में आगे आने के लिए पुरुषों की अपेक्षा अधिक संघर्ष करना पड़ता है। अक्सर महिला पत्रकारों को व्यक्तिगत आक्षेपों से लेकर कार्य स्थल पर भी समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है इसलिए हर महिला पत्रकार की कहानी एक दूसरे से अलहदा होते हुए भी कई स्तरों पर एक है। जहां उनके व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष सम्भवत: जुदा हों पर कार्य स्थलों की चुनौतियां और उसके दबाव एक जैसे हो सकते हैं। महिला पत्रकारों की इस दुनिया में जब हम प्रवेश करते हैं तो पाते हैं कि दुनिया को देखने का इनका नज़रिया पुरुषों से भिन्न है। दुनिया की आधी आबादी के पक्ष इन सभी की पत्रकारिता में दिखाई देते हैं।

सम्भव पत्रिका निरंतर हमारे समय के महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाती रही है। इस अंक में भी हमने लगभग अनछुए विषय को उठाया है। हमारे विद्यार्थियों ने भी इन महिला पत्रकारों के जीवन और रचना कर्म को गहराई से परखा है। हमें आशा है कि यह अंक पत्रकारों की आने वाली पीढ़ियों को दिशा दिखाने में सक्षम होगा। इस अंक को प्रकाशित करने के लिए प्राचार्य प्रो. राकेश कुमार गुप्ता जी ने हमें अनुमति प्रदान की उसके लिए हम उनके आभारी हैं। इस अंक के कुशल सम्पादन के लिए मेरे साथी डॉ. अटल तिवारी जी को साधुवाद।

प्रो. राकेश कुमार
संयोजक, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

हेमंत कुमारी देवी

पत्रकारिता में भारत की पहली महिला

● आरती

हेमंत कुमारी देवी को भारत में महिला पत्रकारिता के बीजारोपण का श्रेय दिया जाता है। पत्रकारिता जगत में हेमंत कुमारी का अतुलनीय योगदान है। जिस ब्रिटिश भारत में महिलाओं का शिक्षा पर अधिकार तक नहीं था, ऐसे समय में एक महिला का संपादक होना कितना संघर्षशील रहा होगा। इसकी हम मात्र कल्पना ही कर सकते हैं। हिंदी नवजागरण के दौरान समाज सुधारकों द्वारा महिला सशक्तिकरण पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया। लेकिन इन पत्रिकाओं में महिलाओं का योगदान नगण्य ही था। कारण, महिलाओं को पत्रकारिता में स्थान नहीं दिया गया। भारतेंदु हरिश्चन्द्र को भी पहली स्त्री पत्रिका 'बालाबोधिनी' के संपादक के रूप में याद किया जाता है, लेकिन इस पत्रिका में किसी स्त्री का लेख शामिल नहीं किया गया।

हेमंत कुमारी देवी चौधरानी भारतेंदु हरिश्चंद्र की समकालीन थीं। हेमंत कुमारी बंग भाषी महिला थीं, लेकिन उन्हें अपने पिता बाबू नवीन चंद्र राय से हिंदी सेवा के संस्कार मिले थे। नवीन चंद्र राय हिंदी के लेखक और समाज सुधारक थे। साथ ही महिला शिक्षा और विधवा विवाह के समर्थक भी थे। जिस समय राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द बनारस में हिंदी भाषा का आंदोलन चला रहे थे, उसी समय पंजाब में बाबू नवीन चंद्र राय नागरी भाषा के प्रचार-प्रसार में लगे थे। मात्र 17 साल की उम्र में हेमंत कुमारी का विवाह श्रीयुत बाबूराज चंद्र चौधरी के साथ हो गया।

हेमंत कुमारी ने सन् 1888 में मध्य प्रदेश के रतलाम से हिंदी मासिक पत्रिका 'सुगृहिणी' का संपादन और प्रकाशन किया। महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से 19वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है। यही वह समय था जब महिलाओं के हक की बात स्वयं महिलाओं ने करना शुरू किया। सन् 1880 से लेकर 1895 तक तीन महत्वपूर्ण पत्रिकाएं निकलीं जिनका संपादन खुद महिलाएं कर रही थीं। इनमें पहली पत्रिका 'सुगृहिणी' (1888) की संपादक हेमंत कुमारी देवी थीं। दूसरी 'भारत भगिनी' (1889) की संपादक हरदेवी और तीसरी 'वनिता हितैषी' (1893) संपादक भाग्यवती थीं।

हेमंत कुमारी देवी 'सुगृहिणी' पत्रिका में स्त्रियों की समस्याओं से संबंधित लेख छापती थीं। इनकी पत्रिका विशेष रूप से स्त्री शिक्षा पर जोर देती थी। हेमंत कुमारी देवी का कहना था कि 'स्त्री आभूषण से नहीं बल्कि शिक्षा से सुशोभित होती है।' लेख के साथ-साथ पत्रिका में स्त्री स्वास्थ्य और इलाज आदि मसलों से जुड़ी सामग्री का भी प्रकाशन होता था। इनकी लेखनी में वह ताकत थी जो पितृसत्तात्मक समाज की बनाई हुई बेड़ियों और प्रथा पर करारा प्रहार करती रही। हेमंत कुमारी की कलम ने पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, महिला स्वावलंबन और महिला शिक्षा सहित हर मद्दे को उठाया। हेमंत कुमारी महिलाओं की शिक्षा को लेकर बहुत ज्यादा चिंतित रहती थीं। उन्होंने भारत-भगिनी की संपादक हरदेवी के साथ मिलकर वनिता बुद्धि प्रकाशनी सभा की स्थापना की। इस सभा का मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा के प्रश्नों को जोरदार ढंग से उठाना था।

हेमंत कुमारी ने हिंदी भाषा व साहित्य के प्रचार प्रसार में भी अपनी अहम भूमिका निभाई। सन् 1888 में जब इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ने हिंदी व उर्दू की जगह अंग्रेजी भाषा में परीक्षाएं करने का ऐलान किया तब हेमंत कुमारी ने इसका पुरजोर विरोध किया। इसके चलते प्रशासन को हिंदी में परीक्षा करवानी पड़ी। लेखन व संपादन कार्य के अतिरिक्त हेमंत कुमारी ने कई आधिकारिक पदों को भी संभाला। 1906 से 1924 तक वह पटियाला में रहीं। उसके बाद उनकी पोस्टिंग देहरादून में नगर निगम आयुक्त के पद पर हुई। हेमंत कुमारी को लोग प्यार से हेमंत कुमारी चौधराइन भी बुलाते थे। सन् 1953 में इनकी मृत्यु हो गई। हेमंत कुमारी देवी ने अपना पूरा जीवन हिंदी पत्रकारिता, साहित्य, महिला शिक्षा और महिला सशक्तिकरण के कार्यों को करने में व्यतीत किया। परंतु विडंबना यह है कि इनके बारे में बहुत कम लिखा गया है, जिसके कारण इन्हें इतनी प्रसिद्धि नहीं मिली, जिसकी वह हकदार थीं।

स्वर्ण कुमारी देवी

उपन्यासकार से पत्रकार बनने तक का सफर

● **सुधीर जांगिड़**

वैसे तो बंगाल का साहित्यिक इतिहास महान लेखकों व उनकी रचनाओं से भरा पड़ा है। लेकिन इन सभी के बीच स्वर्ण कुमारी देवी का महत्व आसमान में टिमटिमाते किसी तारे के समान है। पर आज किताबों के पन्ने पलटने के बावजूद हमें उनका इतिहास विरले ही मिलता है। स्वर्ण कुमारी देवी पत्रकार होने के साथ-साथ कवियत्री, उपन्यासकार और संगीतज्ञ भी थीं।

स्वर्ण कुमारी देवी का जन्म अगस्त 1855 में बंगाल में हुआ। उनके पिता देवेंद्र नाथ टैगोर ब्रह्म समाज के विख्यात दार्शनिक और समाज सुधारक थे। देवेन्द्र नाथ टैगोर उस समय के रूढ़िवादी समाज में अपनी बेटी के लिए एक मार्गदर्शक बनकर उभरे। स्वर्ण कुमारी देवी की प्राथमिक शिक्षा उनके घर में ही पूर्ण हुई।

उनके लेखन की शुरुआत बंगाली भाषा में हुई, लेकिन बाद में उनका रुख अंग्रेजी भाषा की ओर भी हुआ। उनकी रचनाओं में महिलाएं और उनसे संबंधित विषय केंद्र में रहते थे। अपने पहले उपन्यास के प्रकाशन के समय स्वर्ण कुमारी देवी महज 20 वर्ष की थीं। 'दीपनिर्बन' ने स्वर्ण को भारत की पहली महिला उपन्यासकार बना दिया। यह उपन्यास काफी लोकप्रिय हुआ। उनके द्वारा लिखे गए अन्य उपन्यास विद्रोह, फुलेर-माला और मालती इत्यादि हैं। उन्होंने न केवल उपन्यास रचे, बल्कि उनका नाट्य रूपांतरण भी किया। उनके द्वारा रचित 'कल्याणी' नाटक का जर्मन व अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया। इस नाटक में लिखे गीत भी उन्हीं के द्वारा रचित हैं। उनके उपन्यासों की साहित्यिक श्रेष्ठता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि तात्कालिक बंगाली समाज में स्वर्ण के उपन्यासों की तुलना महान उपन्यासकार बंकिम चन्द्र चटर्जी से की जाती थी।

पत्रकारिता जगत में स्वर्ण कुमारी देवी ने अपने कदम 'भारती पत्रिका' के संपादन के साथ रखे। 'भारती पत्रिका' एक साहित्यिक पत्रिका थी। इस बात को लेकर विरोधाभास है कि कुछ जगहों में स्वर्ण कुमारी देवी को भारत की पहली महिला संपादक भी माना जाता है। 'भारती पत्रिका' की शुरुआत ज्योतिरिंद्रनाथ टैगोर ने 1877 में की और इसका पहला संपादन द्विजेंद्रनाथ टैगोर ने किया। सात वर्षों के बाद संपादन का कार्य स्वर्ण कुमारी ने अपने हाथों में ले लिया। इन सारे तथ्यों को जांचने के लिए हमारे पास प्रामाणिक स्रोतों की कमी है। पर एक रोचक तथ्य यह है कि स्वर्ण कुमारी के भाई रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी एक वर्ष के लिए भारती पत्रिका का संपादन किया। जबकि इस पत्रिका के पहले प्रकाशन के समय रविन्द्रनाथ मात्र सोलह वर्ष के थे। स्वर्ण कुमारी देवी ने संपादक रहते हुए अपने लेखों में महिलाओं से सम्बंधित मुद्दे और समस्याओं को उठाया। साथ ही जागरूकता पैदा करने का भरपूर प्रयास किया।

स्वर्ण कुमारी देवी के द्वारा महिलाओं की स्थिति मजबूत करने व उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने हेतु सखी समिति नामक एक संगठन की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य महिलाओं को शिक्षा व आश्रय प्रदान करने के साथ-साथ अनाथों और विधवाओं का सहारा बनना था। स्वर्ण कुमारी देवी ने स्वदेशी आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। उन्हें 1927 में जगत तारिणी स्वर्ण पदक से नवाजा गया और 1929 में बंगीय साहित्य सम्मेलन की अध्यक्ष के तौर पर चुना गया।

स्वर्ण कुमारी देवी का लेखन किसी एक विधा तक सीमित नहीं रहा अपितु उन्होंने कहानियां, लेख, व्यंग्य और विज्ञान के विषय पर भी लिखा है। उनकी रचनाएं इतनी ज्ञानप्रद थीं कि उन्हें उस समय के पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया। उन्होंने राजनीति, सामाजिक कुरीतियों व दिन-प्रतिदिन होने वाली घटनाओं पर भी अपनी निडर और कटाक्ष पूर्ण प्रतिक्रियाएं दीं। उन्होंने 1879 में बांग्ला भाषा में लिखे पहले संगीत- नाटक 'बसंत उत्सव' की रचना की। उनके द्वारा रचित किताबों की संख्या लगभग 25 है। अपनी जीवन यात्रा में उन्होंने 3 जुलाई 1932 को कोलकाता में अंतिम सांस ली।

विद्या मुंशी

पत्रकारिता के साथ स्त्री अधिकारों की सैनिक

• **समीरा**

भारत में आजादी के आंदोलन तक पत्रकारिता एक तरह से आन्दोलन का अंग रही है। ऐसे में विद्या मुंशी भी विचारों की वो तीव्र लहर लेकर आईं जिसने समाज के पूर्व स्थापित नियमों को चुनौती दी। विद्या मुंशी ने न केवल एक खोजी पत्रकार के रूप में क्रांन्तिकारी कार्य किए बल्कि वह महिलाओं के हक की लड़ाई लड़ते हुए सड़कों पर उतरीं।

5 दिसंबर 1919 को बॉम्बे में एक गुजराती परिवार में विद्या कनुगा का जन्म हुआ। इनके पिता गांधीवादी थे। अपने समय में विद्या भारत में स्कूली शिक्षा पूरी करने वाली कुछ चुनिंदा लड़कियों में से एक थीं। स्कूली शिक्षा के बाद विद्या ने मेडिकल परीक्षा उत्तीर्ण की और आगे की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड चली गई। इसी दौरान द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया। यही वह समय था जब विद्या मुंशी कम्युनिस्ट विचारधारा के संपर्क में आई और 1942 में ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गईं। विद्या मुंशी ने अनेक आंदोलनों में हिस्सा लिया और एक लोकप्रिय छात्र नेता बन गईं। 1945 में उन्होंने पेरिस में महिला अंतर्राष्ट्रीय लोकतांत्रिक संघ के सम्मेलन में छात्र प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 1949 में ब्रिटेन से लौटने पर मुंशी ने एक भूगोलवेत्ता और 'द स्टूडेंट' पत्रिका के संपादक सुनील मुंशी से शादी कर ली। सुनील मुंशी ने उन्हें एक रिपोर्टर के रूप में तैयार किया। इसके बाद 1952 में विद्या बॉम्बे से प्रकाशित 'ब्लिट्ज' अखबार की पूर्णकालिक संवाददाता बन गईं और उन्होंने अपनी खोजी खबरों के माध्यम से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। 'ब्लिट्ज' एक लोकप्रिय खोजी साप्ताहिक अखबार था। 1962 तक विद्या मुंशी एक रिपोर्टर के रूप में काम करती रहीं, पर उनके 10 साल के कार्यकाल के दौरान लिखे गए लेख कहीं संग्रहीत नहीं किए गए।

विद्या मुंशी हमेशा महिलाओं के हक के लिए लड़ती रहीं। 1955 से वह महिला आंदोलन में शामिल हुईं। इसके बाद वह

नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमेन और पश्चिम बंगाल महिला समिति की प्रमुख नेता के रूप में उभरीं। उन्होंने वर्ष 2000 तक पश्चिम बंगाल महिला आयोग की अध्यक्षता की। 'द हिंदू' की एक रिपोर्ट के अनुसार मुंशी ने कई वर्षों तक भाकपा के मुखपत्र को प्रकाशित करने वाले बोर्ड का नेतृत्व किया और पार्टी की सक्रिय सदस्य भी रहीं। विद्या मुंशी के कामों को अगर बड़े पैमाने पर देखा जाए तो दहेज, दुष्कर्म सहित महिलाओं से जुड़े अनेक मसलों और अधिकारों की लड़ाई वे लड़ती रहीं।

विद्या मुंशी काफी साहसी महिला थीं। उन्होंने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में भी महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। एक सम्मेलन के दौरान जब कुछ नेताओं ने इस बात पर अफसोस जताया कि युवा महिलाएं आंदोलन में शामिल नहीं हो रही हैं तो मुंशी ने पलटवार किया कि अगर पार्टी के कुलपतियों ने अपने तरीके नहीं बदले तो बड़ी उम्र की महिलाओं को भी पार्टी छोड़ने पर मजबूर होना पड़ेगा। अपने अंतिम वर्षों में विद्या मुंशी एक लेखक के रूप में सामने आई। उनकी पुस्तक 'इन रेट्रोस्पेक्ट–वॉरटाइम एंड थॉट्स ऑन वूमेन मूवमेंट' 2006 में प्रकाशित हुई। इसमें विद्या मुंशी ने नारीवाद, विभिन्न युद्धों के दौरान भारतीय महिला कम्युनिस्टों का काम, अपने जीवनकाल के राजनैतिक उथल–पुथल और महिला आंदोलनों पर विस्तार से लिखा है।

2006 में राजश्री दास गुप्ता 'टेलीग्राफ' में विद्या मुंशी के बारे में बताते हुए लिखते हैं, 'किताबों से उनका प्यार, इंग्लैंड में कम्युनिस्ट पार्टी में उनका शामिल होना, एक पत्रकार के रूप में उनका अनुभव और सामाजिक तथा राजनीतिक कारणों के लिए प्रतिबद्धता और भागीदारी, महिला आंदोलन के मुद्दों ने उन्हें बंगाल की सड़कों पर सबसे आगे खड़ा कर दिया।' उनके साहस और जीवन से जुड़ी हुई राजनीतिक तथा पारिवारिक स्थिति का वर्णन भी राजश्री दास गुप्ता ने अपने साक्षात्कार में किया है।

विद्या मुंशी ने अपनी हिम्मत और साहस से हर लड़ाई में हिस्सा लिया और एक महिला पत्रकार के रूप में नई पहचान बनाई। 94 वर्ष की उम्र में 7 जुलाई 2014 की सुबह विद्या मुंशी ने कोलकाता में अंतिम सांस ली। एकता कपूर अपनी वेब सीरिज स्टेट वर्सेस नानावती में पत्रकार विद्या मुंशी को फिल्मी पर्दे पर लाने की तैयारी कर रही हैं। 2006 में राजश्री दास गुप्ता ने 'टेलीग्राफ' में विद्या मुंशी को कोलकाता की पहली महिला पत्रकार कहा था। 'द हिन्दू' में छपी एक रिपोर्ट विद्या मुंशी को भारत की पहली महिला पत्रकार कहती है। सत्य जो भी हो, पर एक बात स्पष्ट है कि विद्या मुंशी न केवल देश की एक दिग्गज पत्रकार रहीं बल्कि भारतीय महिला आंदोलन की अग्रणी सैनिक भी रहीं।

''रानी लक्ष्मीबाई ने फिरंगियों से लोहा लेते वक्त तो किसी पुरुष–इत्र का इस्तेमाल नहीं किया था। भारत की पहली महिला शिक्षिका सावित्रीबाई फुले ने महिलाओं और अछूतों के लिए कई कार्य किए। सावित्रीबाई फुले के रास्ते में सवर्णों ने कई अड़चनें डालीं पर फुले को सफलता मिली। यह सफलता त्याग और सेवाभाव से मिली। चिपको आन्दोलन की मेधा पाटेकर, आन्ध्र प्रदेश की महिला सरपंच फातिमा बी या इधर–उधर छितरी कर्मठ महिलाएं सामुदायिक विकास, सामाजिक बदलाव और घर की रोजी–रोटी चलाने के लिए पुरुषों का 'वीर–चालीसा' नहीं पढ़तीं। पुरुष वर्चस्व के किले में औरत ने जो सेंध लगाई है, उसके नतीजे भी सामने आ रहे हैं। इसके पीछे कहीं निजी तो कहीं सामूहिक कोशिश जारी है।''

– अलका आर्य

होमाई व्यारावाला

तस्वीरों के जरिए बनाया इतिहास

● **श्रुति गोयल**

'एक ऐसे देश में जहां गांधीजी जैसे महान व्यक्ति को भुला दिया गया है, वहां मुझे याद क्यों किया जाएगा?'

हम अकसर सुनते हैं कि हर तस्वीर कुछ कहती है। हर तस्वीर का अपना अस्तित्व है। कहने को तो एक तस्वीर का स्वभाव स्थिर होता है परंतु एक चलचित्र की भांति वह कैसे कहानी प्रस्तुत करती है, इसका अनुमान लगाना या अनुभव करना हर किसी के बस की बात नहीं। भारत में इस भाव को सर्वप्रथम अनुभव किया गुजरात में रहने वाली एक पारसी युवती होमाई व्यारावाला ने। होमाई का जन्म 9 दिसम्बर सन् 1913 नवसारी, गुजरात में हुआ। अपनी प्रारंभिक एवं स्नातक शिक्षा के लिए होमाई ने मुंबई के सेंट जेवियर्स से अपनी पढ़ाई पूर्ण कर जेजे स्कूल्स ऑफ आर्ट्स में दाखिला लिया। यहां उनकी रुचि तस्वीरें लेने व उनके पीछे उपयुक्त भावों को सोचने और समझने में बढ़ी। फिर क्या था उन्होंने कैमरा उठाया। अपना धीरज बढ़ाया और निकल पड़ीं सड़क पर अपने साथी, अपने कैमरे के साथ। होमाई भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में पहली महिला फोटो पत्रकार बनकर देश की समस्त महिलाओं के लिए एक प्रेरणास्रोत बन गई। वह विश्व की हरेक महिला की अनंत सोच व उसकी पहुंच का जीता जागता उदाहरण बन के उभरीं।

होमाई कहती हैं कि 'मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि मैं कुछ असामान्य कर रहीं हूं या मैं उस समय एक पुरुष प्रधान पेशे में अकेली महिला थी। मैं समझती हूं कि मैं अपने हाव भाव और वेश भूषा के कारण अनौपचारिक थी। इसलिए इससे लोगों को सहज महसूस हुआ होगा। विद्यालय में मैं अपनी मैट्रिक कक्षा में एक मात्र लड़की थी। मुझे लड़कों की संगति में ही बैठाया जाता था।'

कैमरा के प्रति होमाई का लगाव एवं जुड़ाव उतना ही गहरा था जितना उनका अपने परामर्शदाता और जीवनसाथी मानेकशॉ के प्रति। उनकी सबसे प्रारंभिक तस्वीरें मानेकशॉ व्यारावाला के नाम से छपीं जिन्होंने उन्हें इस कला से परिचित कराया था और हर कदम पर उनका मार्गदर्शन करते रहते थे। सन् 1942 में गुजरात से पलायन कर वे दोनों दिल्ली आए और ब्रिटिश सूचना सेवा के अंतर्गत फोटो पत्रकार के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया। होमाई हमेशा राजनीतिक संस्थाओं के

इर्द गिर्द ही दिखाई पड़ती थीं। इसके दौरान उन्होंने कई प्रतिष्ठित घटनाओं का अनुभव किया। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष से लेकर भारत की पहली गणतंत्र परेड और महात्मा गांधी की अंत्येष्टि क्रिया तक को उन्होंने अपने कैमरे में कैद किया। इन सब में उनका व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन दोनों ही मानेकशॉ के साथ कुछ ऐसा जुड़ा कि जैसे ही मानेकशॉ ने प्राण त्यागे, होमाई ने कैमरे से सेवानिवृत्त होने का फैसला ले लिया। 1969 में वह पुनः गुजरात जा बसीं। 40 वर्षों तक अपना जीवन तस्वीरों के बीच व्यतीत करने के पश्चात 1970 में देश की पहली महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की अपनी अंतिम तस्वीर लेकर इस कला को उन्होंने नमस्ते कर लिया।

सन् 2011 में उन्हें पद्म विभूषण एवं भारतीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा लाइफटाइम अचीवमेंट अवॉर्ड से पुरस्कृत किया गया। इसके अगले साल 2012 में वह दुनिया को छोड़ प्रकृति के आलिंगन में लिप्त हो गईं। अपने संघर्ष के दिनों से ही उन्हें यह स्पष्ट था कि वह किस प्रकार की फोटोग्राफर बनना चाहती हैं। होमाई इस बात से शत प्रतिशत परिचित थीं कि वह इस कुपित समाज का एक आम हिस्सा तो नहीं हैं, जिसे हर वर्ग की स्वीकृति प्राप्त हो। परंतु इस प्रमाणीकरण का उनके जीवन में कोई खासा महत्व भी नहीं था।

सईदा बानो

उर्दू पत्रकारिता की मुखर आवाज

● दीपशिखा

जिस देश की संस्कृति आम महिलाओं को आजादी के साथ काम करने की इजाजत न देती हो, वहां अपने हौसले और दृढ़ निश्चय से अगर कोई देश की पहली महिला उर्दू समाचार वाचक बनती है तो यह उस महिला के अदम्य साहस का परिचय ही है। हम बात कर रहे हैं सईदा बानो की, जिनका जन्म 1920 में लखनऊ में हुआ। वह एक भारतीय समाचार वाचक थीं, जो 1947 में ऑल इंडिया रेडियो में शामिल हुई और बाद में उर्दू में समाचार पढ़ने वाली भारत की पहली महिला समाचार वाचक बनीं। सईदा बानो ने उर्दू में एक किताब भी लिखी थी। 'डगर से हटकर' किताब का बाद में उनकी ही पोती के द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद किया गया, जिसका शीर्षक था–'ऑफ द बीटन ट्रैक : द स्टोरी ऑफ माय अनकन्वेंशनल लाइफ।' बानो की इस किताब को दिल्ली में उर्दू अकादमी की ओर से सम्मान भी मिला। 40 के दशक में न केवल वह अकेले रहती थीं बल्कि 30 के दशक में उन्होंने बिना किसी बाधा के कार तक चलाई थी। यह एक ऐसी स्वतंत्रता है जो आज भी अधिकांश भारतीय महिलाओं को उपलब्ध नहीं है। बानो को शायद यह स्वतंत्रता इसलिए मिली क्योंकि वो घर में अपने बड़े भाई–बहनों की तुलना में अधिक विद्रोही थीं। वह जो एक बार करने को सोच लेती थीं, उसे करती ही थीं।

बानो की शादी मात्र 17 वर्ष की उम्र में एक जज से कर दी गई थी। शादी के बाद उन्होंने रेडियो में काम करना शुरू किया। महिलाओं और बच्चों से संबंधित एक कार्यक्रम से बानो के कॅरिअर की शुरुआत हुई। बाद मे विजय लक्ष्मी पंडित की मदद से ऑल इंडिया रेडियो में समाचार बुलेटिन के लिए नियुक्त की गई। पहली बार किसी रेडियो स्टूडियो में बैठ कर समाचार पढ़ना किसी महिला के लिए कितना मुश्किल हो सकता है, आप बखूबी समझ सकते हैं। उस समय का समाज जो महिलाओं को घर से बाहर जाने की इजाजत न देता हो, उस चुनौतियों का भी बानो को सामना

करना था। आरंभ से ही बानो समाज की बंदिशों में रह कर जीने वाली महिलाओं में से नहीं थीं। वह अपनी जिंदगी अपनी शर्तों पर जीती थीं। उनकी शादीशुदा जिंदगी लंबे समय तक नहीं चल सकी।

उस दौर में बानो दो बच्चों के साथ तलाकशुदा थीं, लेकिन कामकाजी महिला थीं। उन्होंने वकील नूरद्दीन अहमद, जो दिल्ली के मेयर और पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित इंसान थे, उनके साथ अपने दीर्घकालीन संबंधों पर चर्चा की। अहमद विवाहित थे और बानो के साथ उनकी दोस्ती एक गहरे प्रेम में विकसित हुई, जो 25 साल तक चली। अपने द्वारा लिखी हुई किताब में बानो बताती हैं कि 'बीबीसी या आकाशवाणी दिल्ली द्वारा किसी भी महिला को समाचार प्रसारक के रूप में काम करने के लिए नियुक्त नहीं किया गया था। मैं पहली महिला थी, जिसे ऑल इंडिया रेडियो ने समाचार पढ़ने के लिए अच्छा माना। बेशक उन्होंने मुझे प्रशिक्षित किया था। मुझे सिखाया गया था कि कैसे पहले अपने नाम के साथ ऑन एयर अपना परिचय दिया जाए और फिर बुलेटिन पढ़ना शुरू किया जाए। मेरी आवाज की गुणवत्ता की सराहना की गई।'

सईदा ने 1965 तक ऑल इंडिया रेडियो में समाचार वाचक का काम किया। उसके बाद उनकी नियुक्ति उर्दू सर्विस के प्रोड्यूसर के रूप में कर दी गई, जहां उन्होंने साल 1970 तक काम किया। तत्पश्चात वह रिटायर हो गईं। यह सारी उपलब्धियां बानो ने अपने दम पर प्राप्त कीं, क्योंकि 1947 में देश के बंटवारे के बाद बानो के पति पाकिस्तान में रहने लगे और बानो हिन्दुस्तान में रहना चाहती थीं। हिन्दुस्तान प्रेम की वजह से बानो ने अपने पति को छोड़ दिया और बच्चों संग हिन्दुस्तान में रहने लगीं। दिलचस्प बात यह रही कि जिस समय बानो समाचार पढ़ा करती थीं उनकी आवाज इतनी अच्छी थी, जिससे श्रोता उनकी तरफ आकर्षित हो जाते थे। बानो की आवाज से प्रभावित बहुत से दर्शकों ने उनसे शादी करने के लिए पत्र भी लिखा। यह सिलसिला कुछ दिनों तक चलता रहा। इसके साथ ही हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे से आक्रोशित लोगों ने बानो को पाकिस्तान चले जाने के लिए भी पत्र लिखे, मगर वह इन चुनौतियों से घबराई नहीं बल्कि डटी रहीं।

एक तरह से सईदा बानो उन महिलाओं के लिए प्रेरणास्रोत बनी जिन्होंने पितृसत्तात्मक सोच को अपने वजूद से दरकिनार कर दिया था। उस दौर की पत्रकारिता में सईदा बानो एक क्रांति की तरह आई, जिन्होंने हर दौर की महिलाओं के लिए नई राह खोली।

''जिस समाज में जनगणना-दर-जनगणना औरतों और बच्चियों की तादाद लगातार घट रही हो; जहां निरोधी-कानूनों के बावजूद दहेज-उत्पीड़न जारी हो और गर्भजल-परीक्षण (अम्नीयोसेंटेसिस) तकनीक की मदद से कन्या भ्रूणों की गर्भपात द्वारा हत्या की जा रही हो; वहां एक स्त्री के लिए न सिर्फ अपने वजूद को कायम रखना; बल्कि देश के कोने-कोने में घट रहे सकारात्मक और नकारात्मक बदलावों को लेखन और पत्रकारिता की मुख्यधारा में दर्ज कराते चलना; कुदरत के महानतम अचम्भों में से एक माना जाना चाहिए।''

बन्द गलियों के विरुद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा

मृणाल पांडे

देश की पहली महिला मुख्य संपादक

● **गीतू कत्याल**

'कहते हैं कुछ लोगों को लेखनी विरासत में मिलती है
पर यह कलम, शब्द और विचार विरासत से ज्यादा है
तभी तो इस कलम पर मजबूत व बेजोड़ पकड़ बनी
जो न डगमगाई और न ही घबराई
बस शब्दों को उकेरती चली गई।'

भारत में पत्रकारिता की शुरुआत महिलाओं और पुरुषों के जिस अनुपात के साथ हुई थी, उसमें आज भी संतोषजनक स्थिति देखने को नहीं मिलती है। यह अंतर और भी ज्यादा गहरा व चिंताजनक हो जाता है, जब बात किसी मीडिया हाउस में महिलाओं के लीड करने की हो। 2019 में यूएन की 'भारतीय मीडिया में लैंगिक असमानता' नाम से आई एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में महिला पत्रकारों को प्रमुख संगठनों में प्रतिनिधित्व करने का मौका नहीं मिलता है, लेकिन पत्रकारिता जगत में कुछ महिलाओं के प्रयासों ने समाज को एक आइना जरूर दिखाया है। यह बदलाव का प्रयास हकीकत में उतना सरल नहीं रहा होगा जितना प्रतीत होता है। पर, लगन, जुनून और दृढ़ निष्ठा के आगे कुछ नहीं टिकता। कुछ ऐसी ही कहानी है मृणाल पांडे की। संभव है कि आपने मृणाल पांडे का नाम न सुना हो क्योंकि इंसान अक्सर अच्छी चीजों से वंचित रह जाता है? मृणाल पांडे भारत की पहली महिला संपादक रही हैं। उन्हें एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया की पहली महिला महासचिव होने का गौरव भी हासिल है।

26 फरवरी 1946 को टीकमगढ़ मध्य प्रदेश में जन्मी मृणाल पांडे ने उपन्यासकार और लेखिका मां शिवानी से कलम का महत्व सीखा। अपनी लेखनी की ताकत का अंदाजा लगाया और अपना सफर शुरू किया। मृणाल पांडे ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में स्नातक, हिन्दुस्तानी संगीत की शिक्षा और वाशिंगटन डी.सी. स्थित कोरकोरन स्कूल से मूर्ति शिल्प, कला और डिजाइनिंग में प्रशिक्षण प्राप्त किया। मृणाल पांडे ने प्रयाग, भोपाल और दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों में अध्यापन भी किया। अध्यापन के बाद मृणाल पांडे ने पत्रकारिता की दुनिया में कदम रखा।

टाइम्स ऑफ इंडिया और हिंदुस्तान टाइम्स समूह के लिए जानी मानी हिन्दी पत्रिकाओं वामा और साप्ताहिक हिंदुस्तान का संपादन किया। उन्होंने एनडीटीवी और दूरदर्शन में एंकर और खबर संपादक के रूप में काम किया। सन 2000 में वह हिंदुस्तान

अखबार की पहली महिला मुख्य संपादक बनीं। इसके बाद वह एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया की महासचिव बनने वाली पहली महिला बनीं। मृणाल पांडे भारत में बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन की सदस्य और नेशनल बोर्ड फॉर फिल्म सर्टिफिकेशन की भी सदस्य रहीं। 2006 में उनके प्रयासों को देखते हुए उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। अप्रैल 2008 में मृणाल पांडे को प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया का सदस्य बनाया गया तो 2009 में उन्हें प्रसार भारती का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

मृणाल पांडे न केवल एक पत्रकार हैं बल्कि एक उम्दा लेखिका भी हैं। इनकी पहली पुस्तक 'धर्मयुग' 1967 में प्रकाशित हुई। उन्होंने अपने लेखन में, कहानियों और उपन्यासों में आजादी के बाद आये परिवर्तनों को दिखाने का प्रयास किया। चूंकि मृणाल पांडे ने अपने जीवन के कुछ वर्ष उत्तराखंड में गुजारे इसलिए उनकी कृतियों में पहाड़ और कुमाउनी भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी कहानियों, लेखों और भाषणों के माध्यम से महिलाओं के लिए एक अलग स्तर पर कार्य करने का प्रयास किया और गलत को गलत कहने की हिम्मत दिखाई। यह प्रयास आज भी जारी है। वह द इंडियन एक्सप्रेस, टाइम्स ऑफ इंडिया और स्क्रॉल जैसे न्यूज संस्थानों के लिए आज भी लिखती हैं।

भारतीय पत्रकारिता आज जिस तरह डगमगा रही है, वहां मृणाल पांडे जैसी साहसी लेखक और पत्रकारों की बहुत आवश्यकता है। उन्होंने अपने कामयाब सफर के जरिए बता दिया कि किसी कार्य या पद को संभालने के लिए केवल ज्ञान और कौशल मायने रखता है। न केवल पत्रकारिता के क्षेत्र में बल्कि हर क्षेत्र में आज भी महिलाओं को प्रतिनिधित्व करने का मौका नहीं मिलता है। आज भी भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग पैमाने मौजूद हैं। ऐसे में मृणाल पांडे का जीवन और उनके द्वारा किए गए विभिन्न प्रयास हमें बहुत कुछ सिखाते हैं।

मधु त्रेहन

पत्रकारिता के हर माध्यम को संवारा

● **विकास त्रिपाठी**

सवाल पूछना पत्रकार का काम है और यह काम मधु त्रेहन को बखूबी आता है। आज लोग मधु त्रेहन को उस महिला पत्रकार के रूप में जानते हैं, जिसने याकूब मेनन का टीवी साक्षात्कार लिया। निडर और बेझिझक एक अपराधी को लाइव कैमरे पर अपने सवालों से निशब्द कर दिया। पर मधु त्रेहन की पत्रकारिता इस इकलौते साक्षात्कार से कहीं ज्यादा है। भारतीय पत्रकारिता के लिए मधु त्रेहन एक तरह की मार्गदर्शक रही हैं। उन्होंने प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और डिजिटल तीनों ही माध्यमों में न केवल काम किया बल्कि इन माध्यमों को नई दिशा भी दी। भारत में पत्रकारिता के माध्यमों के हर बदलाव में मधु त्रेहन का योगदान दिखता है।

मधु त्रेहन का जन्म दिल्ली के एक समृद्ध परिवार में 1940 में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा देहरादून और दिल्ली में हुई। इन्होंने हैरोव टेक्निकल कॉलेज एंड स्कूल ऑफ आर्ट लंदन से जर्नलिस्टिक फोटोग्राफी की शिक्षा ली। पत्रकारिता में स्नातकोत्तर कोलम्बिया स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से किया। मधु की पत्रकारिता का सफर न्यूयार्क में शुरू हुआ। उन्होंने न्यूयार्क में पहले संयुक्त राष्ट्र के प्रेस विभाग में नौकरी की। फिर 'इंडिया अहेड' नामक साप्ताहिक पत्रिका के साथ जुड़ गईं। मधु के पिता वी.वी. पुरी थॉमसन प्रेस दिल्ली के मालिक थे। 1975 में वी.वी. पुरी ने अपनी पत्रकार बेटी को दिल्ली आकर एक अखबार शुरू करने का प्रस्ताव दिया। वरिष्ठ पत्रकार करन थापर को दिए साक्षात्कार में मधु बताती हैं कि उनके पिता जिस तरह का टेबलॉयड अखबार छापने का प्रस्ताव लेकर आए थे, वह भारतीय पाठकों के लिए नहीं था। मधु त्रेहन ने इसकी जगह एक समाचार पत्रिका शुरू करने की योजना पिता के सामने रख दी।

मधु त्रेहन ने आपातकाल के दौरान दिल्ली से 'इंडिया टुडे' पत्रिका की शुरुआत की। प्रारंभिक दिनों में मधु त्रेहन के नेतृत्व में केवल 5 युवाओं की टीम 'इंडिया टुडे' के लिए काम करती थी। मधु ने कई साक्षात्कारों में बताया है कि वह खुद सेंसरशिप अधिकारी के ऑफिस जाकर पत्रिका के हर पेज के लिए स्वीकृति लेती थीं। मधु 'इंडिया टुडे' के साथ केवल दो वर्षों तक संपादक के तौर पर रहीं, लेकिन इस दौरान यह पत्रिका भारतीय पाठकों में लोकप्रिय हो गई। 1977 में मधु ने अपने छोटे भाई अरुण पुरी की देखरेख में 'इंडिया टुडे' को छोड़ दिया और पति डॉ. नरेश त्रेहन के साथ न्यूयॉर्क चली गईं। न्यूयार्क में रहते हुए भी मधु 'इंडिया टुडे' में लगातार विदेशी मामलों पर लिखती रहीं। घर और बच्चों की जिम्मेदारी लगभग 20 वर्षों तक निभाने के बाद 1986 में मधु भारत वापस आईं। अब तक 'इंडिया टुडे' एक प्रतिष्ठित पत्रिका का रूप ले चुकी थी। मधु त्रेहन उस पत्रिका से सीधे जुड़ने के बजाय अपनी नई राह बनाने वाली थीं।

1986 में उन्होंने 'इंडिया टुडे' के साथ भारत की पहली वीडियो मैगजीन न्यूजट्रैक की शुरुआत की। यह भारतीयों के लिए एक नई चीज थी। अभी तक इलेक्ट्रानिक मीडिया के रूप में भारत में केवल दूरदर्शन था। निजी चैनल्स शुरू करने पर प्रतिबंध था और सरकारी नियंत्रण में दूरदर्शन पर प्रसारित खबरें अप्रभावी थीं। न्यूजट्रैक की आवश्यकता पर न्यूयार्क टाइम्स लिखता है कि इंफार्मेशन हंगरी इंडियंस के लिए यह अल्टरनेटिव टेलीविजन था। मधु त्रेहन की देखरेख में न्यूजट्रैक में विक्रम चंद, मृत्युंजय झा, गीता दत्त, अभिनंदन सिकरी और अल्पना किशोर जैसे कई पत्रकारों ने प्रशिक्षण लिया। मधु एक डॉक्यूमेंट्री में बताती हैं, 'उन दिनों पत्रकार

खबर के रूप में कई पन्नों की किताब लिखकर ले आते थे। मैं उन्हें बार-बार वापस करते हुए बोलती कि मुझे केवल उतने ही शब्द लिखकर दो जो तुम्हें इस खबर की आत्मा लगते हों।' मधु त्रेहन के नेतृत्व में न्यूजट्रैक ने कई महत्वपूर्ण खोजी रिपोर्ट्स बनाई। कश्मीरी अलगाववाद के आतंकवाद में परिवर्तित होने की कहानी न्यूजट्रैक ही सबसे पहले लेकर सामने आया। बॉम्बे सीरियल ब्लास्ट, अयोध्या विवादित ढांचे का गिरना और मंडल के विरोध की कुछ दुर्लभ तस्वीरों को न्यूजट्रैक ही सामने लाया। इसने मधु त्रेहन को भारत के अग्रणी खोजी पत्रकार के रूप में स्थापित कर दिया। साथ ही भारतीय इलेक्ट्रानिक पत्रकारिता की आगे की दिशा तय कर दी।

अगस्त 1994 में मधु त्रेहन ने बॉम्बे सीरियल ब्लास्ट के आरोपी याकूब मेमन का इंटरव्यू लिया। यह याकूब मेमन का एकमात्र टेलीविजन इंटरव्यू है। सन 2000 में मधु त्रेहन ने न्यूजट्रैक को 'इंडिया टुडे' के हवाले कर फिर से एक नई राह पकड़ ली। एक तरफ न्यूजट्रैक 'आज तक' के रूप में टीवी चैनल में बदला तो दूसरी ओर मधु ने इंटरनेट पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा। मधु ने 'वाह इंडिया डॉट काम' नाम की वेबसाइट शुरू की। एक बार फिर मधु युवा और तेज तर्रार पत्रकारिता को नई दिशा देने लगीं। 'वाह इंडिया' कुछ विवादों में भी फंसी। एक रिपोर्ट के लिए मधु और उनकी टीम को सर्वोच्च न्यायालय की अवमानना के केस का भी सामना करना पड़ा। डॉट काम बबल के समाप्त होने के साथ ही 'वाह इंडिया' भी समाप्त हो गया।

मधु खुद को एक बेसब्र इंसान के रूप देखती हैं। वह ज्यादा दिनों तक एक स्थान पर कभी नहीं रहीं। यह इनकी पत्रकारिता में भी देखने को मिलता है। पहले प्रिंट, फिर इलेक्ट्रानिक और बाद में डिजिटल माध्यमों में मधु ने पत्रकारिता के नये आयाम लिखे। उनके इस स्वभाव पर वरिष्ठ पत्रकार करन थापर कहते हैं, 'मधु ने दो बड़े उद्यम शुरू किए, पर दोनों को अपने भाई अरुण पुरी को सौंप दिया।'

वर्ष 2009 में मधु त्रेहन की किताब 'प्रिज्म मी ए लाए, टेल मी अ ट्रुथ-तहलका एस मेटाफर' आई। यह किताब 2001 के तहलका कांड पर आधारित है। अनगिनत साक्षात्कार और खोजी रिपोर्टिंग वाली यह किताब भारतीय पत्रकारिता के लिए एक मिसाल है। 2012 में मधु ने अभिनंदन सिकरी के साथ न्यूज लॉन्ड्री वेबसाइट की शुरुआत की। पत्रकारिता जगत के ऊपर रिपोर्टिंग करने वाला यह एक अनूठा प्रयोग था। शुरुआती दिनों में मधु न्यूजलॉन्ड्री के लिए साक्षात्कार और रिपोर्टिंग के अलावा हास्य व्यंग्य के कार्यक्रम भी करती थीं। क्लोद्स लाइन, कैन यू टेक इट और सब की धुलाई जैसे कार्यक्रमों ने न्यूज लॉन्ड्री को एक डिजिटल मीडिया संस्थान के रूप में चर्चित किया। न्यूज लॉन्ड्री अपने विज्ञापन मुक्त आर्थिक मॉडल के लिए भी जाना जाता है। आज यह देश के चुनिंदा मीडिया संगठनों में है जो पूरी तरह सब्सक्राइबर्स के पैसों से चल रहा है। कुछ वर्षों पहले ही मधु त्रेहन न्यूज लॉन्ड्री से सेवानिवृत्त हुई पर आज भी न्यूज लॉन्ड्री के लिए इंटरव्यू करती रहती हैं। यूट्यूब पर मधु के कई साक्षात्कार देखने को मिलते हैं। साथ ही विभिन्न मीडिया संस्थानों के लिए वह स्तंभकार के रूप में लिखती हैं।

मधु त्रेहन भारतीय पत्रकारिता में मील के पत्थर के समान हैं। इन्होंने न केवल भारतीय पत्रकारिता के हर माध्यम को तराशा है बल्कि एक प्रशिक्षक के रूप में कई पत्रकारों को आगे बढ़ाया है। खोजी पत्रकारिता में अपना स्थान बनाकर इन्होंने युवा महिला पत्रकारों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है।

तवलीन सिंह

राजनीति पर बेबाक चलती कलम

● **धनंजय कुमार**

बात जब भारत की महिला पत्रकारों की हो रही है तो तवलीन सिंह को कैसे भुलाया जा सकता है। वही तवलीन सिंह जिन्होंने यह साबित किया कि महिला और उस पर भी राजनीतिक पत्रकार होना कोई चुनौती नहीं बल्कि एक स्वर्णिम मौका होता है। तवलीन सिंह भारत की एक पुरस्कार विजेता अनुभवी पत्रकार होने के साथ साथ देश की पहली महिला राजनीतिक पत्रकार के रूप में रेखांकित की जाती हैं। इन्होंने प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनों के लिए काम किया है। राजनीतिक पत्रकार होते हुए भी तवलीन सिंह अपने विचारों में राजनीति और पत्रकारिता को अलग अलग चश्मे से देखती हैं। उनका कहना है कि 'पत्रकारों को कभी भी राज्यसभा की सीट या पद्म पुरस्कार नहीं लेने चाहिए। एक बार जब आप ऐसा कर लेते हैं तो आपको पत्रकारिता छोड़ राजनीति में आना चाहिए। इसमें कोई बुराई नहीं है।' तवलीन एक लेखिका भी हैं, जिनके खाते में छह किताबें हैं। फिलहाल तवलीन सिंह 'इंडिया टुडे' के लिए एक फ्रीलांसर के रूप में काम करती हैं। इसके अलावा द इंडियन एक्सप्रेस, जनसत्ता और अमर उजाला के लिए साप्ताहिक राजनीतिक कॉलम भी लिखती हैं।

प्रिंट पत्रकारिता

तवलीन सिंह ने अपने पत्रकारीय कॅरिअर के चार दशकों में भारतीय उपमहाद्वीप में कई राजनीतिक घटनाओं को कवर किया है। इन्होंने 1974 में नई दिल्ली में 'द स्टेट्समैन' में एक जूनियर रिपोर्टर के रूप में पत्रकारिता जगत में कदम रखा और 1982 में 'द टेलीग्राफ' में एक विशेष संवाददाता के रूप में शामिल होने से पहले लगभग आठ वर्षों तक वहां काम किया। इसके बाद वह 1985 में 'द संडे टाइम्स' के लिए दक्षिण एशिया संवाददाता बन गईं।

टीवी पत्रकारिता

1990 में तवलीन सिंह ने टेलीविजन पत्रकारिता में काम करना शुरू किया और स्टार प्लस न्यूज चैनल के दिल्ली ब्यूरो को लीड किया। सात साल बाद उन्होंने उसी चैनल पर एक हिंदी साप्ताहिक कार्यक्रम 'एक दिन, एक जीवन' की एंकरिंग का काम संभाला। टेलीविजन पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कई समसामयिक कार्यक्रमों में भी वह काम कर चुकी हैं। वह एनडीटीवी प्रॉफिट (एनडीटीवी प्राइम) पर एक शो की एंकरिंग कर चुकी हैं और अटल बिहारी बाजपेयी जैसे भारतीय राजनेताओं और अमिताभ बच्चन जैसे बॉलीवुड सितारों का साक्षात्कार ले चुकी हैं।

रिलेशनशिप पर बेबाकी

तवलीन सिंह के पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के गवर्नर रहे सलमान तासीर के साथ संबंध रहे, जिनकी 2011 में हत्या कर दी गई। पाकिस्तानी राजनेता सलमान तासीर अपनी पुस्तक का प्रचार करने भारत आए थे। उसी समय उनकी तवलीन सिंह से भेंट हुई। सलमान पहले से ही शादीशुदा थे। उनके तीन बच्चे भी थे। बताया जाता है कि दोनों लोग अपने परिवार से इस संबंध को छुपाने के लिए दुबई चले गए और

गर्मियों के दौरान लंदन की यात्रा की। वहीं तवलीन सिंह ने बेटे आतिश को जन्म दिया। जब आतिश दो साल के थे तब उनके माता-पिता अलग हो गए। तवलीन सिंह बेटे आतिश को अपने साथ ले आईं और दिल्ली में अपने पुश्तैनी घर में रहने लगीं। सलमान तासीर 1980 के बाद कभी भारत नहीं आए और आतिश के 21 साल के होने तक वह उससे नहीं मिले। अपने रिश्ते के बारे में तवलीन सिंह ने एक इंटरव्यू में कहा कि 'मुझे उनके साथ अपने रिश्ते पर बहुत गर्व है। उसके साथ मेरा रिश्ता बर्बाद हो गया था क्योंकि वह पाकिस्तान में एक राजनेता बनने जा रहे थे। आप एक भारतीय पत्नी और बच्चों के साथ एक राजनेता नहीं हो सकते।'

विवादों से वास्ता

तवलीन सिंह 1980 के दशक में पाकिस्तानी राजनेता और व्यवसायी सलमान तासीर के साथ अपने संबंधों के कारण खूब चर्चा में रहीं। सोशल मीडिया पर अक्सर उनके बेटे ट्रोलिंग का शिकार हो जाते हैं। अक्टूबर 2018 में मीटू आंदोलन के खिलाफ टिप्पणियों और आंदोलन के विरोध में राय रखने पर भारतीय ट्विटर यूजर्स सहित बड़ी हस्तियों ने तवलीन सिंह की आलोचना की थी। जाहिर है विवाद ने उस समय आग पकड़ ली जब उन्होंने मीटू के आरोपी पत्रकार एम.जे. अकबर के बचाव में कूद पड़ीं। कुछ दिनों बाद महिलाओं के अधिकारों का समर्थन करने वाले कई मंचों ने खुले पत्रों में तवलीन पर पलटवार किया।

मीटू की आलोचना के दो महीने बाद तवलीन ने पत्रकार फेय डिसूजा के कपड़ों के बारे में मजाक करने के बाद खुद को एक और विवाद में घसीट लिया। उन्होंने कहा कि 'उन्होंने एक समाचार चैनल पर मीटू बहस के दौरान एक आदमी की तरह कपड़े पहने थे।' उनकी इस टिप्पणी पर पत्रकार बरखा दत्त और अन्य ट्विटर यूजर्स के साथ अच्छी नहीं बैठी और वह फिर से एक ट्विटर वॉर में फंस गईं। इन विवादों के बीच हमें यह देखने को मिलता है कि एक ऐसे समाज में जहां महिलाओं को राजनीति जैसे विषयों का जानकार होने में कम आंका जाता है या उनके विचारों को महत्ता नहीं दी जाती, वहां तवलीन सिंह यह सिद्ध कर रही हैं कि महिलाओं का भी राजनीति जैसे विषयों में उतना ही दखल है जितना पुरुषों का है।

''यह जो सफर बसमतिया से भंवरीबाई तक ने बीस बरसों में तय किया, उससे भी बड़ा और दुरूह सफर वह है, जो हमारी महिला-पत्रकारों, लेखिकाओं ने तय किया है; मीराबाई से लेकर मणिमाला तक।...इस सफर में हास्य भी है, करुणा भी, आक्रोश भी है और क्षमा भी...''

''कृष्णकली तब हर साहित्यिक घर की किराएदारिन थी। उसके देर से घर लौटने का इन्तजार हर मकान मालिक करता था और मैं करती थी अखबारवाले का इन्तजार। उन दिनों मेरा कोई घर नहीं था, जहां मैं 'कृष्णकली' को रखती। सो उसे मैंने रखा था अपनी पलकों पर।''

– पद्मा सचदेव

नलिनी सिंह

पत्रकारिता की आंखों देखी

● **अमर**

नलिनी सिंह का जन्म पंजाब के जालंधर में हुआ था। शिक्षा हासिल करते हुए उन्होंने पत्रकारिता के पेशे को चुना। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए वह टीवी पत्रकार, एंकर और एक लेखक के तौर पर काम कर रही हैं। उन्हें दूरदर्शन के 'आंखों देखी' शो से लोकप्रियता मिली। हालांकि 90 के दशक के अंत और बीसवीं सदी के अंतिम दशक की शुरुआत में दूरदर्शन पर उन्होंने कई समसामयिक कार्यक्रमों की एंकरिंग की। वह लेखिका भी हैं। उन्होंने 'वीमेन्स क्वेस्ट फॉर पावर : फाइव इंडियन केस स्टडीज' शीर्षक से किताब लिखी, जो 1980 में प्रकाशित हुई। इस किताब में उन्होंने भारत में महिलाओं की स्थिति का वर्णन किया है। 2003 में इन्होंने एक नेपाली-हिंदी चैनल लॉन्च किया। यह भारत का पहला नेपाली भाषा का चैनल था, जिसकी वह चेयर पर्सन थीं।

खोजी पत्रकारिता पर नलिनी सिंह के कार्यक्रम 'आंखों देखी' ने लोगों का सबसे ज्यादा ध्यान आकर्षित किया। आंखों देखी के जरिए उन्होंने अनेक आपराधिक घटनाओं की पड़ताल की। उसके जरिए लोगों के सामने सच लेकर आई। एक तरह से इस शो के जरिए भारत की राजनीति, भ्रष्टाचार और आपराधिक मामलों को लोगों तक पहुंचाया। उन्होंने दूरदर्शन पर 'हैलो जिंदगी' शीर्षक से एक सामाजिक दस्तावेजीकरण श्रृंखला की भी एंकरिंग की। यह शो अनेक विषयों पर वास्तविक लोगों के जीवन के उदाहरणों को दिखाता था। यहां विषय के रूप में सौंदर्य की धारणा, भारतीय परिवारों में संचार, विवाह का महत्व और बच्चे को गोद लेना जैसे सामाजिक मुद्दों पर चर्चा होती थी। उन्होंने कई राजनेताओं और सेलिब्रिटी का इंटरव्यू लिया है। 1995 के चुनावों पर नलिनी सिंह ने नजर रखी और लोगों का क्या दृष्टिकोण है, यह लोगों के सामने रखा।

भारतीय राजनीति पर नलिनी का दृष्टिकोण बहुत व्यापक है। वह गंभीर राजनीतिक विश्लेषक मानी जाती हैं। अनेक टीवी कार्यक्रमों में उन्हें विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित किया जाता है। बहस के दौरान उनके शब्दों का चुनाव और बोलने का लहजा लोगों को आकर्षित करता रहा है।

अगर पारिवारिक और निजी जिंदगी की बात की जाए तो उनके पिता एचडी शौरी थे, जो उपभोक्ता मामलों के कार्यकर्ता की भूमिका निभाते थे। घर में लिखने-पढ़ने का माहौल शुरू से था। घर की बात की जाए तो पत्रकारिता का पेशा उन्होंने अकेले नहीं अपनाया बल्कि उनके भाई दीपक शौरी और अरुण शौरी ने भी पत्रकारिता को चुना। वह एक लेखक और राजनेता के तौर पर भी चर्चित हुए। उनकी अगली पीढ़ी भी लेखन की दुनिया से जुड़ी है। उनकी बेटी रत्ना वीरा ने तो एक उपन्यास भी लिखा है।

गौरी लंकेश

दुस्साहस और जोखिम भरी पत्रकारिता

• **मनोज थायत**

अमूमन किसी की मौत के बाद शोक मनाया जाता है परंतु पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या के बाद सोशल मीडिया पर समाज के एक विशेष तबके द्वारा जश्न मनाया गया था। गौरी लंकेश के लिखने और बोलने से किसी को इतनी तकलीफ हुई कि उसने उस कलम और आवाज को 5 सितंबर 2017 को हमेशा के लिए स्थिर कर दिया।

गौरी लंकेश की हत्या इस लोकतांत्रिक देश में एक अभिव्यक्ति की आवाज की पहली हत्या नहीं थी। 2013 में डॉक्टर नरेंद्र दाभोलकर, जो लगातार अंधविश्वास और कुप्रथाओं के खिलाफ आवाज उठाते थे, की पुणे में गोली मारकर हत्या कर दी जाती है। पुणे से ही कुछ दूर महाराष्ट्र में सामाजिक कार्यकर्ता गोविंद पानसरे को 16 फरवरी 2015 को गोली मार दी थी। गंभीर रूप से घायल पानसरे को उपचार के लिए मुंबई लाया गया, जहां चार दिन तक चले उपचार के बाद 20 फरवरी को उनकी मौत हो गई। वहीं 2015 में ही साहित्यकार एमएम कलबुर्गी की उनके ही घर में हत्या कर दी जाती है।

सवाल उठाया जा सकता है कि आखिर हम गौरी लंकेश को क्यों जानें? गौरी लंकेश लोकतांत्रिक सिद्धांतों को प्रेषित करने वाली एक वरिष्ठ पत्रकार तथा जनता की ओर से आजादी तथा ईमानदारी की एक प्रखर प्रवक्ता थीं। उनका संविधान में अटूट विश्वास था। कह सकते हैं कि इसी वजह से इतनी आसानी से उन्हीं के घर के बाहर जहां वह आंख बंद करके आवाजाही करती थीं, वहीं उनकी हत्या कर दी गई।

गौरी लंकेश का जन्म 29 जनवरी 1962 को जिला शिमोगा कर्नाटक में हुआ था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा बंगलुरु से ही प्राप्त की तथा 1979-82 तक बीए पत्रकारिता, इतिहास, पर्यटन सेंट्रल कॉलेज बसवानगुड़ी बंगलुरु से अंडर ग्रेजुएशन की पढ़ाई पूरी की। तत्पश्चात उन्होंने 1983-84 में भारतीय जनसंचार संस्थान नई दिल्ली से पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा की पढ़ाई की। गौरी लंकेश ने 1985 में द टाइम्स ऑफ इंडिया के साथ जुड़कर पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना पहला कदम रखा। इस तरह उनकी शुरुआती पत्रकारिता अंग्रेजी भाषा में शुरू हुई। द टाइम्स ऑफ इंडिया में 1990 तक कार्य करने के पश्चात उन्होंने सन् 1990 से 1998 तक संडे में काम किया। 1998 से 2000 तक गौरी ने नई दिल्ली स्थित ईटीवी में ब्यूरो प्रमुख के रूप में काम किया। इसी बीच 2000 में उनके पिता पी. लंकेश का निधन हो गया, जो कि कन्नड़ भाषा के साहित्यकार, कवि एवं पत्रकार थे। उनके निधन के पश्चात गौरी ने पिता द्वारा निकाली जाने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'लंकेश पत्रिके' के संपादन का कार्य संभालने में जुट गई।

गौरी लंकेश ने धार्मिक कट्टरता, लिंग, धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के प्रति किसानों, आदिवासियों के कल्याण के मामलों में दृढ़ विचारों के लिए अपना स्थान बनाया। वह दक्षिणपंथी विचारधारा की आलोचक रहीं। नक्सलवाद के खिलाफ निरंतर आवाज उठाती रहीं। नक्सलियों के प्रति अपने इस दृष्टिकोण के कारण उनका बड़े भाई (लंकेश पत्रिके के मालिक) के साथ मतभेद भी हुआ, जिस कारण 2005 में गौरी को साप्ताहिक पत्रिका 'गौरी लंकेश पत्रिके' शुरू करना पड़ा। गौरी ने दुस्साहसी और अधिक जोखिम वाली पत्रकारिता की। साथ ही जनता की आवाज बनकर सामने आईं।

गौरी लंकेश ने पत्रकारिता की एक नई मिसाल पेश की। दिल्ली में मीडिया की चकाचौंध भरी नौकरी को छोड़कर उन्होंने स्थानीय स्तर पर स्थानीय भाषा में पत्रकारिता करने का फैसला लिया। लोकतंत्र और संविधान में अटूट विश्वास के साथ उनकी एक विचारधारा थी। शायद यह विचारधारा ही उनकी हत्या का कारण बनी।

पैट्रिशिया मुखीम

उत्तर पूर्वी राज्यों की प्रतिनिधि पत्रकार

● **शिव शंकर**

भारत के उत्तर पूर्व में स्थित सात राज्यों के समूह को 'सात बहनों' का उपनाम मिला है। आम तौर पर देखा गया है कि उत्तर पूर्व राज्यों की खबरों को राष्ट्रीय स्तर के किसी न्यूज चैनल या अखबार में जगह नहीं मिल पाती। सिर्फ चुनाव और क्षेत्रीय पार्टियों की आपसी रंजिश ही कभी-कभी अखबारों की सुर्खियां बन पाती हैं। उत्तर पूर्वी राज्य जैसे मेघालय, असम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुंदरता, जनजातीय आबादी, उनकी जीवनशैली, पहनावा, कला और लोकनृत्य के लिए देश विदेश में प्रसिद्ध हैं। फिर भी राष्ट्रीय स्तर पर इन राज्यों से जुड़ी खबरों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। लेकिन धीरे धीरे अब स्थिति में कुछ बदलाव देखने को मिल रहा है। उत्तर पूर्व में पत्रकरिता की स्थिति सुधारने में एक प्रमुख योगदान है मेघालय की पैट्रिशिया मुखीम का।

भारत राज्यों का एक संघ है और पत्रकारिता इस संघ को एकजुट रखने में एक भूमिका निभाती रही है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि पत्रकारिता में विविधता हो। पत्रकार देश के हर कोने से न्यूज रूम का हिस्सा बने। पैट्रिशिया मुखीम इसी विविधता की मिसाल हैं। वह उत्तर पूर्वी राज्यों विशेषकर मेघालय की आवाज बनकर उभरी हैं। एक तरह से वह इन राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। उन्होंने अपने दृढ़ निश्चय, अथक प्रयास और कभी हार न मानने वाली मानसिकता की मदद से उत्तर पूर्वी राज्यों की खबरों को न केवल राष्ट्रीय पटल पर रखा बल्कि कई अंतरराष्ट्रीय अखबारों में लेख लिखकर इन राज्यों की बात विश्व पटल तक पहुंचाई।

पैट्रिशिया मुखीम पत्रकार होने के साथ साथ सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक भी हैं। वह शिलांग टाइम्स की संपादक हैं। उनका जन्म मेघालय की राजधानी शिलांग में हुआ था। उनके बचपन में ही माता और पिता अलग-अलग हो गए थे। इस कारण मुख्य रूप से उनकी परवरिश माता ने की। पैट्रिशिया की प्रारंभिक शिक्षा शिलांग में ही हुई। इसके बाद उन्होंने बी.ए. एवं बी.एड की शिक्षा पूरी की। उन्होंने एक साक्षात्कार में बताया था कि उनकी स्कूल की फीस 20 रुपए प्रति माह हुआ करती थी। लेकिन, आर्थिक तंगी के कारण उनकी मां फीस भरने में खुद को असमर्थ महसूस करती थीं। मां एक न्यूज ऑफिस में काम करती थीं। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के बाद भी उन्होंने कभी इस बात को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। पैट्रिशिया शुरू से ही पढ़ाई-लिखाई में तेज थीं। दसवीं में उन्होंने अंग्रेजी में अच्छे अंक हासिल किए। इसलिए उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति मिल गई।

उन्होंने अपने कॅरिअर की शुरुआत एक शिक्षिका के रूप में की थी। इसी बीच 1987 में उन्होंने पत्रकारिता जगत में कदम रखा। इसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपनी इसी लगन के कारण 2008 में वह शिलांग टाइम्स की संपादक बनीं। पैट्रिशिया मुखीम मेघालय में एक जाना माना नाम है। लोग उनकी लेखन शैली और सरल जीवन से प्रभावित हैं। वह मेघालय के लोगों के लिए सामाजिक उत्थान की गतिविधियों में शामिल रहती हैं। तीन दशक से भी ज्यादा

समय से पत्रकारिता और समाज सेवा में सक्रिय रहने से उनके पास जनजातीय झगड़े सुलझाने, सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार उजागर करने और महिलाओं के अधिकारों से जुड़े मुद्दों पर बड़ा अनुभव है। वह सक्रिय रूप से मेघालय में आतंकवाद को खत्म करने के लिए अभियान चलाती रही हैं। इसके लिए उन्होंने शिलांग वी केयर नाम से एक गैर सरकारी संस्था की स्थापना की है, जिसका मकसद मेघालय से आतंकवाद खत्म कराना है।

पैट्रिशिया मुखीम अपनी प्रेरणा का स्रोत डॉ. वेन डायर की किताबों को मानती हैं। उनकी किताबों ने उनके जीवन पर काफी प्रभाव डाला है। यही कारण है कि उन्होंने मातृवंश पर आधारित एक किताब 'खांसी मैट्रिलिनियल सोसायटी–चैलेंज इन 21 सेंचुरी' में एक पूरा अध्याय लिखा है। पैट्रिशिया ने आम नागरिकों और सरकार के बीच की दूरी कम करने में सरकार का सहयोग किया, जिसका उदाहरण है स्वदेशी महिला संसाधन केंद्र शिलांग, जिसकी वह निदेशक हैं। इसके साथ ही वह जिला उपभोक्ता फोरम में अपनी भूमिका का निर्वहन कर चुकी हैं। उत्तर पूर्वी विकास अध्ययन संस्थान में एक सलाहकार के रूप में भी जुड़ी हुई हैं।

पैट्रिशिया मुखीम को कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 1996 में उन्हें चमेली देवी जैन पुरस्कार मिला। 2000 में उन्हें भारत सरकार द्वारा चौथे सर्वोच्च भारतीय नागरिक सम्मान पद्मश्री से सम्मानित किया गया। 2008 में उन्हें उपेन्द्र नाथ ब्रम्हा सोल्जर और ह्यूमैनिटी पुरस्कार मिला। इसके एक साल बाद 2009 में उन्हें सिवा प्रसाद बरुहा पुरस्कार मिला। पैट्रिशिया का कहना है कि 'एक पत्रकार के रूप में मेरी राय यह है कि स्वतंत्रता का अर्थ है स्वयं को व्यक्त करने का अधिकार और बहुमत से सहमत न होना। क्योंकि, जरूरी नहीं कि वह बहुमत हर समय सही हो। मुझे आजादी और आजादी की हवा में सांस लेना अच्छा लगता है और मुझे लगता है कि जो सही है वही लिखा जाना चाहिए। वह बिना किसी डर या पक्षपात के लिखा जाना चाहिए। यही मेरे जीवन की कसौटी है।'

विभिन्न गांवों के अध्ययन बताते हैं कि पंचायतों में महिलाओं के प्रवेश से पंचायतों की कार्यपद्धति में बदलाव आया है। गांव पंचायतों का एजेंडा बदल गया है। पंचायतों के पुरुष सदस्य गांव की सड़क या कोई इमारत बनाने को प्राथमिकता देते हैं, लेकिन महिलाएं घर और परिवार से सम्बन्धित समस्याओं को प्राथमिकता देती हैं। ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या पेयजल और शौचालय की है। इसलिए महिलाएं पेयजल और शौचालय की व्यवस्था को प्राथमिक रूप से लेती हैं।...तिहत्तरवें संशोधन के बाद पंचायत, ब्लॉक और दूसरे स्थानीय निकायों में चुनकर आई दस लाख महिलाओं में से अधिकतर अशिक्षित और गरीब हैं, लेकिन फिर भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं, जहां बहुत सी महिलाओं ने अपनी जिम्मेदारियों को कई रुकावटों के बाद भी उचित ढंग से निभाया। इनमें से अधिकतर महिलाओं ने बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की कोशिश की। आठ पुरुषों और पांच महिलाओं की पंचायत में पंच सविता ने सबसे पहले गांव में पम्प लगवाने का काम किया। इसके अलावा महिलाओं को परिवार नियोजन की जानकारी देने के लिए वह गांव में एक स्वास्थ्य केन्द्र खोलने के पक्ष में हैं।

– अन्नू आनन्द

बानो हरालु

पत्रकारिता के साथ पर्यावरण की सजग प्रहरी

● **शिल्पी**

बानो हरालु एक साथ दो भूमिकाएं निभा रही हैं। वह पत्रकार होने के साथ साथ वन्य जीव संरक्षक भी हैं। उन्होंने एक पत्रकार के रूप में 20 साल तक काम किया। इस दौरान वह दूरदर्शन, एनडीटीवी और नार्थ ईस्ट मिरर के साथ जुड़ी रहीं। उन्हें पूर्वोत्तर भारत की उत्कृष्ट रिपोर्टिंग के लिए 2001 में चमेली देवी जैन अवार्ड से सम्मानित किया गया।

बानो हरालु की वन्य जीव संरक्षक बनने की यात्रा 2009 में शुरू हुई। उन्होंने दूरदर्शन और एनडीटीवी के साथ दो दशकों से अधिक समय तक काम करने के बाद टेलीविजन पत्रकारिता को नमस्ते कर लिया। इस विषय में बानो ने एक साक्षात्कार में कहा कि 'उत्तर पूर्व से 20 वर्षों तक टेलीविजन रिपोर्टिंग में मुझे इसके असंख्य समुदायों की कहानियों को साझा करने का सौभाग्य मिला। यहां के खूनी विद्रोह, लोगों में आ रहे बदलाव, बुनियादी ढांचों की उपेक्षा, ब्रह्मपुत्र की बाढ़, गैंडों के अवैध शिकार और तेज गति वाली ट्रेनों से हाथियों के कटने की घटनाएं मुझे अपनी ओर खींचती थीं। वहां की भूमि की सुंदरता मुझे लुभाती थी। कई वर्षों तक मैं सोच रही थी कि मैं अपने दो प्यार–पत्रकारिता और पर्यावरण को कैसे साथ ला सकती हूं।' अंतत: यह मौका बानो हरालु को मिला।

2011 में बानो हरालु ने नागालैंड वन विभाग के लिए राज्य में वन्य जीवों की स्थिति निर्धारित करने के लिए एक सर्वेक्षण का समन्वय किया। इस दौरान बानो की नजर में अमूर फाल्कन्स नामक पक्षियों की एक प्रजाति आई। ये पक्षी कीट भक्षी होते हैं और ऐसा माना जाता है कि सिर्फ दक्षिण अफ्रीका में ही ये हर साल 2.5 अरब दीमक खा जाते हैं। इसलिए ये प्रजनन और प्रवासी क्षेत्रों की कृषि और पारिस्थितिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साइबेरिया के ये पक्षी नागालैंड के वोखा जिले के दोयांग जलाशय में एकत्र होते हैं। कुछ समय के लिए वहां आराम करते हैं और बाद में अपने अंतिम गंतव्य दक्षिण अफ्रीका के लिए उड़ान भरते हैं। बानो ने देखा कि दोयांग के स्थानीय लोग इन प्रवासी पक्षियों का बड़ी मात्रा में शिकार कर रहे हैं। अमूर फाल्कन्स को स्थानीय लोग भोजन के लिए या स्थानीय बाजारों में बेचने के लिए मार रहे थे।

बानो हरालु ने अक्टूबर 2012 में अमूर फाल्कन्स के संरक्षण के लिए काम शुरू किया। उन्होंने वन्य जीव संरक्षकों के एक छोटे समूह का नेतृत्व किया। इस समूह ने अमूर फाल्कन्स के ऊपर डाटा एकत्र किया। बानो हरालु ने मंत्रियों, नौकरशाहों और दोयांग के स्थानीय निवासियों को इस पक्षी के संरक्षण के बारे में जागरूक करना शुरू किया। उन्होंने यह बात समझानी शुरू की कि कैसे प्रवासी पक्षी पर्यटन क्षेत्र के विकास में मदद कर सकते हैं। नवंबर 2013 में भारतीय वन्य जीव संस्थान और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के वैज्ञानिकों ने नागालैंड वन विभाग के अधिकारियों के साथ अमूर फाल्कन्स की सेटेलाइट टैगिंग की ताकि इन पक्षियों के प्रवास मार्ग का पता लगाया जा सके। इस कार्य में भी बानो हरालु ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बानो हरालु ने 2013 में नागालैंड वाइल्ड लाइफ एंड बायोडायवर्सिटी कंजर्वेशन ट्रस्ट की स्थापना की। इस संस्था की टीम की ओर से जुटाई गई अमूर फाल्कन्स के शिकार की तस्वीरों ने जल्द ही दुनिया भर के वन्य जीव संरक्षण संगठनों में आक्रोश पैदा कर दिया। नतीजतन बर्ड लाइफ इंटरनेशनल, बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी और रैप्टर रिसर्च एंड कंजर्वेशन फाउंडेशन जैसे संगठनों ने इन प्रवासी पक्षियों के शिकार को रोकने के लिए संयुक्त रूप से अभियान चलाने का निर्णय लिया। बानो के प्रयास रंग लाए। 2013 में ही कई ग्राम पंचायतों ने अमूर फाल्कन्स के शिकार पर रोक लगा दी।

इसके बाद बानो और उनकी टीम ने समुदाय में गर्व के स्रोत के रूप में अमूर फाल्कन्स को स्थापित करने के लिए फ्रेंड्स ऑफ द अमूर फाल्कन अभियान शुरू किया। इसके लिए उन्होंने नागालैंड सरकार और स्थानीय संगठनों के साथ साझेदारी की। अमूर फाल्कन्स अब इन क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था के वैकल्पिक स्रोत में बदल रहे हैं। अमूर फाल्कन्स के निवास के आसपास पर्यटन केंद्र स्थापित किए गए हैं। यह धीरे धीरे आजीविका के एक सार्थक स्रोत के रूप में उभर रहा है। इस पूरे अभियान में बानो हरालु का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस योगदान के लिए उन्हें 2017 में नारी शक्ति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सुचेता दलाल

खोजी पत्रकारिता वाया घोटालों का पर्दाफाश

● **शिवानी**

पत्रकार एवं लेखिका सुचेता दलाल का भारतीय पत्रकरिता में बड़ा नाम है। उन्हें 1992 में देश के सबसे बड़े स्टॉक मार्केट घोटाले का पर्दाफाश करने के लिए जाना जाता है। उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक उत्कृष्ट काम किए, पर 1992 के घोटाले के बाद उनका नाम हर जुबान पर था। इसके कारण इन्हें खूब चरचा मिली। कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया।

पत्रकार सुचेता दलाल 1962 में मुंबई में पैदा हुई थीं। उनकी शुरुआती पढ़ाई मुंबई से हुई। इसके बाद कर्नाटक कॉलेज धारवाड़ से स्टैटिस्टिक्स में स्नातक किया। बॉम्बे विश्वविद्यालय से एलएलबी और एलएलएम की डिग्री ले चुकी हैं। सुचेता को बचपन से बिजनेस का शौक था मगर वह एक पत्रकार बनना चाहती थीं। उन्होंने अपने दोनों सपनों को पूरा किया। आखिरकार वह एक बिसनेस पत्रकार बनीं।

सुचेता दलाल ने पत्रकार के रूप में अपने कॅरिअर का सफर 1984 में फॉर्च्यून इंडिया पत्रिका से शुरू किया। इसके बाद 1990 में टाइम्स ऑफ इंडिया की बिजनेस डेस्क पर आ गईं। वह यहां पर 1998 तक बिजनेस संपादक के रूप में जुड़ी रहीं। तत्पश्चात परामर्श संपादक के रूप में इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप में शामिल हो गईं। साल 2008 तक उन्होंने द इंडियन एक्सप्रेस और फाइनेंशियल एक्सप्रेस के लिए कॉलम भी लिखे। सुचेता दलाल ने देवाशीष बसु, गिरीश संत, शांतनु दीक्षित और प्रद्युम्न कौल जैसे प्रमुख पत्रकारों के साथ काम करके अपने कौशल को बढ़ाया। आपकी कुछ खोजी तहकीकातों में 1992 का हर्षद मेहता घोटाला, आईडीबीआई घोटाला, एनरॉन घोटाला, सीआर भंसाली घोटाला और केतन पारेख घोटाला शामिल है।

जैसा कि ऊपर बताया गया कि सुचेता दलाल ने भारत के सबसे बड़े शेयर बाजार के घोटाले का पर्दाफाश किया था। स्टॉक ब्रोकर हर्षद मेहता की सच्चाई को वह दुनिया के सामने लाईं। इससे सभी को पता चला कि हर्षद मेहता ने किस प्रकार से 4000 करोड़ रुपए का घोटाला किया। आपकी खोजी पत्रकारिता के कारण ही इतने बड़े घोटाले से पर्दा उठा और आरोपी को सजा तक हुई। उस घोटाले के साथ ही केतन पारेख घोटाले को भी सामने लाने में उनका बड़ा हाथ था। इस घोटाले का खुलासा साल 2001 के आसपास हुआ था। उससे पता चला कि केतन पारेख ने कंपनियों को और शेयर खरीदने वालों को गलत जानकारी देकर हेरफेर किया था। शेयर के दाम बढ़ाए थे। दाम बढ़ने के बाद शेयर बेचकर बड़ा प्रॉफिट कमाया था। कुछ बैंकों से भी हेरा-फेरी के जरिए करोड़ों रुपयों का लोन लिया। तत्पश्चात शेयर मार्केट में इन्वेस्ट किया।

सुचेता दलाल के पति देवाशीष बसु ने मनीलाइफ नाम से पाक्षिक पत्रिका निकाली। सुचेता दलाल ने 2006 से मनीलाइफ के लिए लिखना शुरू किया। 2010 में भारत में खराब वित्तीय साक्षरता का जवाब देते हुए सुचेता दलाल ने अपने पति के साथ मनीलाइफ फाउंडेशन की स्थापना की। इसके बाद वह छह साल के लिए कॉर्पोरेट मामलों के लिए मंत्रालय के निवेशक शिक्षा और संरक्षण कोश की सदस्य रहीं। वर्तमान में वह मनीलाइफ पत्रिका की प्रबंध संपादक हैं।

उन्होंने बीते जून में ट्वीट किया कि एक बड़े ग्रुप के शेयर्स को आसमान तक पहुंचाने में किसी ऑपरेटर का हाथ है। यह ऑपरेटर जाना पहचाना है, जिसकी शेयर मार्केट में दोबारा एंट्री हुई है। यह ऑपरेटर इस बार विदेश से ऑपरेट कर रहा है और यह खेल इतने ऊंचे लेवल का है कि सेबी का ट्रैकिंग सिस्टम भी शायद ही इसे पकड़ पाए। कुछ नहीं बदला है। सुचेता दलाल के ट्वीट के बाद यह रिपोर्ट भी सामने आई कि नेशनल सिक्योरिटीज डिपॉजिटरी लिमिटेड ने अडानी ग्रुप के तीन अन्वेषकों के खातों को फ्रीज कर दिया है। यह तीन अन्वेषक विदेशी संस्थान थे।

सुचेता दलाल को पत्रकारिता जगत के लिए किए गए योगदान के लिए कई पुरस्कारों से नवाजा गया है। 2006 में उन्हें तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के द्वारा पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके साथ ही चमेली देवी जैन पुरस्कार भी मिला है। हर्षद मेहता घोटाले पर काम करने के लिए सुचेता को वुमन ऑफ सब्सटेंस डिग्री से भी नवाजा गया है।

सेवंती नैनन

पत्रकारिता जगत की निगरानी करने वाली पत्रकार

● पुष्पेंद्र

सेवंती नैनन एक पत्रकार, स्तंभकार, शोधकर्ता और मीडिया समीक्षक हैं। वह हूट डाट कॉम नामक वेबसाइट की संपादक हैं, जो भारत के पहले मीडिया प्रहरी के रूप में जानी जाती है। नैनन को 1989 में उत्कृष्ट महिला मीडियाकर्मी के रूप में चमेली देवी जैन पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। वह पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय से जुड़े एक अकादमिक केंद्र में अतिथि प्रवक्ता भी हैं।

सेवंती नैनन की किताब 'हेडलाइंस फ्रॉम द हार्टलैंड' को हिंदी समाचार पत्र उद्योग के विकास के पहले गहन अध्ययन के रूप में जाना जाता है। 90 के दशक में उत्तरी और मध्य भारत में एक समाचार पत्र क्रांति की शुरुआत हुई। हिंदी भाषी राज्यों में जब साक्षरता का स्तर बढ़ा तो संचार का भी विस्तार हुआ। लोगों के खरीदने की क्षमता में बढ़ोतरी हुई। हिंदी अखबार ने छोटे शहरों और गांवों में अपने पाठक बनाए। भले ही ये समाचार पत्र राष्ट्रीय रूप से कितने भी ऊंचाई पर पहुंच गए हों, फिर भी वे पाठकों की दौड़ में स्थानीय ही रहे। लेकिन स्थानीय समाचार के इस विश्व में लोगों की क्षेत्रीय पहचान के लिए यह स्थानीयकरण क्या कर रहा था, ऐसे सवाल उठने शुरू हो गए। सवाल उठाना लाजिमी भी है, क्योंकि वैश्वीकरण के इस युग में संचार अपनी भूमिका निभाने में सफल नहीं हो पा रहा था। वरिष्ठ पत्रकार सेवंती नैनन ने आठ राज्यों के अग्रणी क्षेत्रों में अध्ययन किया। वहां की ग्रामीण समाचार क्रांति और राजनीति, प्रशासन पर उनके प्रभाव को समझने का प्रयास किया।

नैनन 'द टेलीग्राफ' अखबार में एक नियमित स्तंभकार हैं। इससे पहले वह द हिंदू, द इंडियन एक्सप्रेस, मिंट, वॉल स्ट्रीट जर्नल और हिंदुस्तान टाइम्स आदि समाचार पत्रों में एक स्तंभकार के रूप में जुड़ी रही हैं। उन्होंने पत्रकारिता में अपना कॅरिअर हिंदुस्तान टाइम्स से शुरू किया। तत्पश्चात वह द इंडियन एक्सप्रेस की संपादक बनीं। 2001 में उन्होंने मीडिया वॉचडॉग के रूप में 'हूट' नामक वेबसाइट की शुरुआत की। 2018 के आसपास इसे एक संग्रह और मीडिया अनुसंधान संस्थान के रूप में स्थापित किया गया।

'हूट' देश में व्यवस्थित रूप से न्यूज रूम की रिपोर्टिंग करने वाला पहला मीडिया संस्थान बना। इसने मीडिया और संपादकीय पदानुक्रमों के स्वामित्व संरचनाओं का विश्लेषण किया। उसमें यह खुलासा किया कि विज्ञापनदाता समाचार एजेंडा को कैसे आकार दे रहे हैं। इसने मीडिया कवरेज में स्व-सेंसरशिप और राजनीतिक पूर्वाग्रह का दस्तावेजीकरण किया।

सेवंती नैनन कहती हैं कि आज का मीडिया एजेंडा सेटिंग के अनुसार चलता है। मीडिया में इतनी ताकत होती है कि वह किसी भी मसले को हमारे दिमाग में भर दे। उदाहरण के रूप में अन्ना आन्दोलन को लेकर जो नॉन स्टॉप कवरेज हमारे टीवी चैनलों के द्वारा किया गया, इससे हर कोई यह सोचने के लिए विवश हो गया कि कौन सा राष्ट्रीय मसला महत्वपूर्ण है। जहां तक इसके नकारात्मक पहलू की बात है तो हर किसी को चोर कह देना और जेल में डाल देने की बात कहना गलत है। ऐसे में यह ध्यान रखना चाहिए कि सब कुछ टीआरपी ही नहीं होती।

बरखा दत्त

कारगिल से मोजो तक का सफर

• **प्रियंका**

'जैसे-जैसे मैं बड़ी होती गई, अपने पेशे में और अधिक अनुभवी होती गई, मैंने महसूस किया कि हर उपलब्धि प्रतिशोध का एक दौर भड़काएगी, यह भी सिर्फ फील्ड में अनुभव के साथ ही आता है।'

उपरोक्त पंक्तियां मात्र बरखा दत्त का एक कथन नहीं बल्कि उनके जीवन अनुभवों का एक निचोड़ है। बरखा दत्त का जन्म 18 दिसम्बर 1971 को नई दिल्ली में हुआ था। बरखा के पिता एस.पी. दत्त एयर इंडिया के एक अधिकारी थे, जिनका अप्रैल 2021 में कोरोना से निधन हो गया। बरखा दत्त की मां प्रभा दत्त पत्रकार रही थीं। यही कारण है कि बरखा दत्त पत्रकारिता में अपने कौशल का श्रेय अपनी मां को देती हैं। बरखा दत्त ने अपनी शिक्षा दिल्ली के सेंट स्टीफंस कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में की। उन्होंने जामिया मिल्लिया इस्लामिया के मास कम्युनिकेशन रिसर्च सेंटर से मास्टर डिग्री ली। साथ ही न्यूयार्क से भी पत्रकारिता में मास्टर डिग्री प्राप्त की।

बरखा दत्त ने अपने कार्य की शुरुआत एनडीटीवी न्यूज चैनल से की थी। 1999 में कारगिल युद्ध के दौरान बरखा को

रिपोर्टिंग करने का अवसर मिला। एक महिला पत्रकार होने के कारण इस अवसर ने उनके जीवन को अलग तरह से प्रभावित किया। उस समय यह आम बात नहीं थी कि युद्ध के क्षेत्र में कोई महिला हाथ में माइक लिए रिपोर्टिंग करती देखी जाए। पर, उनके इस कदम से आज भी अनेकों भारतीय लड़कियां प्रेरणा लेती हैं।

बरखा दत्त ने समय-समय पर अपने साहस का परिचय दिया। चाहे वह 2002 के गुजरात दंगों को लाइव कवर करना हो, 2008 में 26/11 के मुंबई हमले का लाइव हो या कश्मीर, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और इराक जैसे मुद्दों पर बढ़ चढ़कर रिपोर्टिंग करना। इन सभी मसलों पर उन्होंने बेहतरीन रिपोर्टिंग का नमूना पेश किया। काम करने के दौरान मशहूर होने के दो पहलू होते हैं। लोगों का प्रोत्साहन मिलना और भयभीत कर देने वाली धमकियों से निपटना। पत्रकारिता के अपने पेशे में उन्होंने अनेकों अच्छे-बुरे पड़ाव देखे। कई बार तालियों की गड़गड़ाहट मिली तो कई बार आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा। ऐसे ही एक बार उनको आलोचना का सामना तब करना पड़ा जब गुजरात दंगों की उनकी रिपोर्टिंग को एकतरफा कहा गया या नीरा राडिया टेप कांड के दौरान बरखा का नाम उछला।

बरखा दत्त एक टीवी टॉक शो 'वी द पीपल' से भी काफी मशहूर हुई। यह शो दर्शकों द्वारा काफी पसंद किया जाता था। बरखा की आलोचनाओं में एक मुख्य कड़ी तब जुड़ी जब जम्मू कश्मीर से धारा 370 हटाई गई। पाकिस्तान बौखलाया हुआ था। वह कभी अमेरिका से मध्यस्थता करने के लिए कहता तो कभी यूएन से। इसी बीच इस मुद्दे पर बरखा दत्त ने एक वीडियो बना कर अपने यूट्यूब चैनल पर शेयर किया। इस वीडियो में उनके द्वारा की गई कुछ बातों से लोग भड़क गए। उनकी गिरफ्तारी की मांग करने लगे। उन्होंने इस परिस्थिति का सामना सूझबूझ, संयम और साहस से किया।

वह राजनीतिक मुद्दे ही नहीं बल्कि महिलाओं के हितों के लिए भी मुखर रही हैं। चाहे वह तीन तलाक से जुड़ा मसला

हो, उन्नाव कांड हो अथवा इसी तरह की दूसरी घटनाएं, हर विषय को उन्होंने अपनी पत्रकारिता में तरजीह दी। एनडीटीवी के साथ 21 साल बिताने के बाद उन्होंने उसे अलविदा कह दिया। वह कुछ समय के लिए तिरंगा टीवी में एंकर और परामर्श संपादक के रूप में जुड़ीं। तत्पश्चात 'मोजो' के जरिए डिजिटल जगत में कदम रखा। मोजो का अर्थ है मोबाइल जर्नलिज्म। इसी नाम से अपना चैनल शुरू किया। 'मोजो' यूट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर पर उपलब्ध है, जिसकी हाल ही में वेबसाइट भी लान्च हुई है। इस चैनल के माध्यम से बरखा दत्त और उनकी टीम खुद ग्राउंड रिपोर्टिंग करती है। मोजो को लॉकडाउन के दौरान उत्पन्न प्रवासी संकट पर की गई रिपोर्टिंग के लिए काफी सराहना भी मिली। पत्रकारिता के लिए उन्हें अनेक पुरस्कार मिले। भारत के चौथे सर्वोच्च नागरिक सम्मान पद्मश्री सहित कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया। उनकी पत्रकारिता ने फिल्मों के कई किरदारों को प्रेरित किया। 2004 में आई फिल्म लक्ष्य में प्रीति जिंटा ने 1999 के कारगिल संघर्ष पर रिपोर्टिंग करने वाली एक महिला पत्रकार की भूमिका निभाई। 2011 की फिल्म नो वन किल्ड जेसिका में रानी मुखर्जी ने एक समाचार रिपोर्टर की भूमिका निभाई, जो पहली बार कारगिल संघर्ष पर रिपोर्टिंग करती है। यह दोनों किरदार बरखा दत्त से प्रेरित माने जाते हैं। इतना ही नहीं हाल में आई मुंबई डाइरिज वेब सीरीज में भी उनके किरदार को दर्शाया गया है।

रिपोर्टिंग से थोड़ा हटकर 2015 में उन्होंने 'दिस अनक्वाइट लैंड : स्टोरीज फ्रॉम इंडिया फॉल्ट लाइंस' नामक किताब लिखी, जिसे पाठकों ने काफी पसंद किया। इस किताब में उन्होंने अनेक दंगों का जिक्र किया है। उनकी किताब में कश्मीर और पाक संबंधों के बारे में, जातिवाद, हिंदुत्व का एजेंडा, साम्प्रदायिकता आदि अनेक बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है। बरखा दत्त एक ऐसी महिला पत्रकार हैं, जिसने हार मानना और डरना जाना ही नहीं। एक ऐसी महिला जो आज की महिलाओं को चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित करती है।

पुरुष के लिए उपभोग का विषय है तो भले हो, स्वयं स्त्री के लिए संचार माध्यमों पर स्त्री छवि के आधिपत्य का अर्थ क्या है? निहितार्थ क्या है? स्त्री की देह का वैभव। उसके रहस्य, उसके गोपन। उसकी लज्जाएं। सबके जाने-पहचाने, खुले फिर भी गोपन रहस्य-इसका औचित्य? मात्र इतना कि स्त्री को स्वयं उसकी देह के सन्दर्भ में असहज बनाए रखा जा सके। शरीर को शर्मिन्दगी का बोझ का, छिपा रखने की जरूरत का पर्याय बनाकर स्त्री को काबू किया जा सके। पुरुष की पुरुष जाने। स्त्री स्वयं अपने आपे को लेकर, अपने शरीर को लेकर सदियों से इतनी सहज कभी नहीं थी जितनी सदी के अन्त में केयर-फ्री और विस्पर और माला डी और कोहिनूर और पीटर पैन और लिबर्टीना के माध्यम से अपने मासिक धर्म, अपनी उन्मद रति भाव और अपने दैहिक ऐश्वर्य के विषय में हुई है-सदियों बाद एक भूरपूर खुली सांस ले पाने में समर्थ। परम्परागत समाज की नींव अगर स्त्री की शर्मिन्दगी पर टिकी थी तो बेशक वह हिल उठी है और ऐसे कुछ दुष्ट चुटकुलों में निहित शरारती विचारों की चोट से तो पूरी इमारत ही अगर ढह जाए तो आश्चर्य नहीं।

– अर्चना वर्मा

कविता देवी बुंदेलखंडी

ग्रामीण पत्रकारिता की आवाज

● **प्रियांशु गौतम**

पत्रकारिता के क्षेत्र में आने वाले अधिकांश लोग शहर आकर शहरी ही बनकर रह जाते हैं। पर, आज हम जिसकी बात करने जा रहे हैं उन्होंने न केवल खुद को आगे बढ़ाया बल्कि अपने जैसी दलित और पिछड़े समाज की महिलाओं को भी आगे बढ़ाने का काम किया। अपने इसी प्रयास के तहत वह उत्तर भारत में ग्रामीण और स्थानीय पत्रकारिता के नए पैमाने गढ़े। हम यहां बात कर रहे हैं कविता देवी बुंदेलखंडी की।

कविता देवी का जन्म उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के कुंजन पुरवा गांव के एक दलित किसान परिवार में हुआ था। इनकी शादी 12 साल की छोटी उम्र में ही करा दी गई। कोई औपचारिक शिक्षा भी नहीं मिली। कविता के गांव में एक गैर सरकारी संगठन का केंद्र था। यहां गैरसाक्षर महिलाओं के लिए कक्षाएं चला करती थीं। पिता से छिपकर कविता ने केंद्र जाना शुरू किया। इसी केंद्र से कविता के पत्रकारिता का सफर भी शुरू हुआ। केंद्र से एक छोटा समाचार पत्र 'महिला डाकिया' निकलता था। कविता इससे जुड़ गई। यह ग्रामीणों के बीच काफी प्रचलित था, पर कुछ अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण उसे बंद करना पड़ा। कविता देवी ने पिता को बताए बगैर अपनी पढ़ाई पूरी की। इसी बीच उन्होंने पत्रकारिता में मास्टर ऑफ आर्ट्स की उपाधि प्राप्त की।

कविता देवी बुंदेलखंडी ने साल 2002 में 'खबर लहरिया' नाम का एक स्थानीय अखबार शुरू किया। शुरुआत में यह केवल उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिले में प्रकाशित हुआ। इसकी खास बात यह थी कि इसमें केवल महिलाएं काम करती थीं। अखबार का मूल उद्देश्य क्षेत्रीय मुद्दों को उठाना और स्थानीय लोगों की खबरें छापना था। कविता देवी बुंदेलखंडी ने एक कार्यक्रम में बताया कि उनका अखबार भारत का पहला और एक मात्र अखबार है जिसका स्टाफ, संपादक और संचालन पूरी तरह से महिलाओं द्वारा किया जाता है। उनके संगठन में ज्यादातर निम्न जाति और ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ी महिलाएं शामिल हैं।

अखबार में जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, लिंग आधारित भेदभाव से जुड़ी सामग्री को लेकर सावधानी बरती जाती है। साथ ही आदिवासियों तथा ग्रामीणों की समस्याओं को प्रमुखता दी जाती है। यही कारण है कि अखबार शुरू होने के साथ ही लोगों ने उसे पसंद किया। कविता एक साक्षात्कार में बताती हैं कि 'खबर लहरिया' शुरू करने के पीछे सोच थी, 'समाज की मौजूद उस धारणा को तोड़ना, जो औरतों को कमजोर मानती है। उन पुरुषों के लिए सबक, जो सोचते हैं कि पत्रकारिता जैसे जटिल क्षेत्र में महिलाएं टिक नहीं पाएंगी।' अखबार शुरू होते ही कविता को धमकियां मिलने लगीं। लोग गालियां देने लगे। उनकी आवाज को दबाने का प्रयास किया गया, लेकिन 'खबर लहरिया' ने सच्ची रिपोर्टिंग करके अपना नाम बनाया। 'खबर लहरिया' शुरुआत में बुंदेली में प्रकाशित होता था। जब अन्य जिलों में अखबार की मांग बढ़ी तो उसे कई स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित किया गया। अखबार महोबा, बुंदेली, अवधी, भोजपुरी, वज्जिका आदि भाषाओं में प्रकाशित हुआ। 'खबर लहरिया' को 2015 में पूरी तरह डिजिटल माध्यम में परिवर्तित कर दिया गया। कई और लोग अखबार से जुड़ने लगे। सभी को यहां अपनी स्थानीय भाषाओं में सामग्री उपलब्ध कराई गई। 'खबर लहरिया' ने कई पुरस्कार भी अपने नाम किए। मसलन–चमेली देवी जैन पुरस्कार, ग्लोबल मीडिया फोरम पुरस्कार आदि।

कविता देवी ने 'खबर लहरिया' में कई पदों पर काम किया। आज वह अपना खुद का शो भी चलाती हैं। 'द कविता शो' एक साप्ताहिक समाचार कमेंट्री शो है। कविता देवी की पसंदीदा बीट अपराध है। वह अपने शो में रिपोर्टिंग से जुड़ी कुछ कहानियां भी सुनाती हैं। कहानी के हर पहलू पर टिप्पणियां और सवाल करती हैं। कविता देवी ने काफी संघर्ष करके यह मुकाम हासिल किया है। आज वह अखबार की प्रधान संपादक और सह–संस्थापक हैं। खबर लहरिया संगठन हाशिए के समाज से आने वाली महिलाओं को पत्रकारिता में मौका देता है। कविता देवी ने कभी हार नहीं मानी। हमेशा अपने काम के प्रति जागरूक रहीं। अपने साथ अन्य महिलाओं को भी जागरूक करने का काम किया। शुरुआत में बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। वह दलित समाज से थीं। महिला थीं। फिर भी उन्होंने अपने कदम पीछे नहीं हटाए। खुद के लिए और अन्य महिलाओं के लिए लड़ाई लड़ी और आज भी लड़ रही हैं।

दयामनी बारला

आंदोलनकारी पत्रकार की बनी पहचान

• **सुमित**

पत्रकारिता के साथ-साथ आंदोलनकारी होना आसान काम नहीं है। लेखनी पर तो सवाल उठता ही है। इसके साथ ही अराजक तत्वों का भी सामना करना पड़ता है। पर, अगर जीवन का हर दौर ही संघर्षों से गुजर रहा हो तो इसे सहन करने की आदत सी पड़ जाती है। इन्हीं संघर्षों से होकर गुजरती है दयामनी बारला की कहानी। दयामनी बारला का नाम कुछ ही लोगों ने सुना होगा। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि हमारे समाज के अधिकांश लोग आज भी आदिवासी समाज और उनकी समस्याओं से अनभिज्ञ हैं। दूसरा यह कि दयामनी बारला एक आदिवासी महिला हैं।

दयामनी बारला का जन्म 11 दिसम्बर 1965 को झारखंड राज्य के एक छोटे से गांव अराहा (गुमला) के मुंडा परिवार में हुआ था। रांची विश्वविद्यालय से वाणिज्य में परास्नातक पूरा कर वह अपने राज्य की पहली आदिवासी पत्रकार बनीं।

वह पत्रकार होने के साथ साथ आदिवासी समाज की आवाज होने के रूप में भी जानी गईं। दयामनी बारला की ओर से किए गए काम को ध्यान में रखकर साल 2000 में ग्रामीण पत्रकारिता के लिए काउंटर मीडिया अवार्ड तथा 2004 में नेशनल फाउंडेशन फॉर इंडिया फेलोशिप अवार्ड से पुरस्कृत किया गया। उनकी काम करने की राह इतनी आसान नहीं रही। उन्हें 2006 से 2012 के दौरान आदिवासियों के अधिकार के लिए चलाए गए आंदोलन के चलते कई बार जेल भी जाना पड़ा।

पत्रकारिता और समाज सेवा करते हुए वह 2014 में आम आदमी पार्टी के टिकट पर चुनाव भी लड़ीं, परंतु असफल रहीं। मौजूदा समय में दयामनी बारला 'जन हक' पत्रिका की संस्थापक संपादक और आदिवासी मूलवासी अस्तित्व रक्षा मंच की अध्यक्ष हैं। यह संस्था आदिवासियों, दलितों और किसानों के उत्थान के लिए कार्य करती है। इसके साथ ही दयामनी की एक चाय की दुकान भी है, जो उनकी आजीविका का मुख्य आधार है। उन्होंने विस्थापन की पीड़ा पर एक किताब भी लिखी है, जिसका शीर्षक है 'विस्थापन का दर्द'।

दयामनी बारला के संघर्षों की शुरुआत तब हुई जब उनके पिता को उनकी ही जमीन से बेदखल कर दिया गया। साथ ही अन्य आदिवासियों की तरह दयामनी को भी आदिवासी होने के लिए प्रताड़ित किया गया। दयामनी ने जीवन यापन और अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए कई संघर्षों के साथ ऐसे कार्य भी किए जो उनके जीवन यापन का आधार बने। इस कड़ी में उन्होंने चाय बेची। घरेलू मदद के रूप में काम किया। जंगलों से फल तोड़कर बाजार में बेचने के लिए गईं। इन संघर्षों के बीच

महिला होना उनके लिए अपने आप में एक अलग लड़ाई साबित हुई। उन्हें यौन प्रताड़ना का भी सामना करना पड़ा।

पिछले वर्षों में दयामनी बारला ने झारखंड के मूल निवासियों को उनके अधिकारों के लिए लड़ने और उन्हें सशक्त बनाने के लिए तथा जनता में जागरूकता बढ़ाने के लिए कई लेख लिखे हैं। उनके आंदोलनकारी जीवन की शुरुआत 1995 में झारखंड में जल, जंगल, जमीन की लड़ाई से जुड़ी हुई है। तब से लेकर आज तक वह झारखंड के आदिवासी समाज के लिए होने वाले सभी आंदोलनों में अपना योगदान देती रही हैं। 1995 में जब कोयल कारो परियोजना पर बड़े स्तर पर काम होने जा रहा था तब सरकार का कहना था कि वह इस प्रोजेक्ट के जरिए 710 मेगावाट की बिजली पैदा करेगी, लेकिन दयामनी के साथ खड़े आंदोलनकारियों का कहना था कि बिजली निर्माण में ग्रामीणों और आदिवासी लोगों को उनके जीवन की बुनियादी जरूरतों से दूर किया जा रहा है। इस प्रोजेक्ट की वजह से 256 गांव के लोगों का घर छीन लिया जाता। लगभग दो लाख से भी ज्यादा लोग विस्थापित हो जाते। करीब 55 हजार हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि पानी में डूब जाती। साथ ही 27 हजार एकड़ जंगल भी इसकी वजह से बर्बाद हो जाता। इस आंदोलन के बीच उनको तरह-तरह की धमकियां मिलीं, जिसमें गांव छोड़ने से लेकर जान से मारने तक की बातें कही गई, लेकिन दयामनी ने बिना रुके इन सबका सामना किया। वह अपने लक्ष्य पर अडिग रहीं। उन्हें सलाखों के पीछे जाने का न डर था और न जान गंवाने का।

हम नए चेतना-सम्पन्न पढ़े-लिखे पुरुष समाज को भी दोष कैसे दें, वह तो स्त्री की आधुनिकता का जबर्दस्त हिमायती है। हर नवयुवक पत्नी के रूप में ऐसी स्त्री चाहता है जो उसकी घरेलू समस्याओं में ही न घुल जाए, बाहरी दुनिया से जुड़े और 'स्वीट होम' को आर्थिक योगदान दे।... लेकिन आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते ही स्त्री अपने लिए झरोखे खोलकर अपनी नजर से संसार को देखना शुरू करती है तो जिन्दगी के परकोटे पर सवाल उठने लगते हैं। फिर स्त्री की जो छवि बनती है, वह अभी तक पांव की जूती समझी जाने वाली आज्ञाकारिणी अर्द्धांगिनी से मेल नहीं खाती, बल्कि विसात उलट देने वाली नई हैसियत की सहनागरिक के रूप में उभरने लगती है। अब पारम्परिक सांस्कृतिक विरासत प्राप्त स्वामी लोग अपनी गद्दी हथियाने के लिए बढ़ी चली आ रही स्त्री को प्रकट या अप्रकट रूप से लगाम दें कि न दें? अतः नए भारत के कार्यालयों, कारखानों, अस्पतालों, विद्यालयों में तुरन्त नाका उठा लिया जाता है या फिर ऐसे जाल बुने जाते हैं कि स्त्री-प्रतिभा छटपटा-छटपटा कर दम दे दे।

– मैत्रेयी पुष्पा

दयामनी बारला आदिवासियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक कर उन्हें सशक्त बनाना चाहती हैं। 'झारखंड समृद्ध हो, लोग शिक्षित हों और समाज के उत्थान के लिए काम करें' जैसी सोच रखने वाली दयामनी बारला का प्रयास रहता है कि दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समाज से जुड़े लोगों में शोषण के प्रति जागरूकता बढ़े और उनकी स्थिति में सुधार हो।

कादंबरी मुरली

खेल पत्रकारिता में जमाई धाक

● **गौतम**

'मैं भी छू सकती हूं आसमान, मौके की है मुझे तलाश'। यह वाक्य अधिकांश महिलाओं से सुनने को मिल जाता है। महिलाओं ने अपनी काबिलियत हर रूप में साबित की है। चाहे वह एक मां के रूप में हो या फिर बहन, दोस्त, कर्मचारी, बीवी, बॉस, नेता या खिलाड़ी हो।

ऐसे में जब पत्रकारिता जगत में महिलाओं की भूमिका पर नजर डालें तो पाएंगे कि टीवी पत्रकारिता में कम से कम महिलाओं का परचम पुरुषों के बराबर है। इसका एक उदाहरण हिंदी समाचार चैनल आज तक के रूप में देखा जा सकता है। इसमें पहले बुलेटिन के साथ-साथ आखिरी बुलेटिन तक उनका बोलबाला है। यही नहीं चैनल के प्राइम टाइम शो का नेतृत्व भी एक महिला पत्रकार द्वारा किया जाता है।

जब हम 90 के दशक में पत्रकारिता जगत में महिलाओं की भूमिका की बात करते हैं तो कुछ चुनिंदा नाम ही ध्यान में आते हैं। कादंबरी मुरली उन्ही चुनिंदा नामों में से एक हैं। उस दशक में महिला पत्रकारों की संख्या को अंगुलियों पर गिना जा सकता था। ऐसे में कादंबरी ने खेल पत्रकारिता को अपना विषय चुनकर अब तक अप्रचलित समझा जाने वाला फैसला लिया। 90 के दशक में खेल जैसे क्रिकेट धीरे धीरे लोगों के बीच अपनी पैठ जमा रहा था। साथ ही कादंबरी भी खेल पत्रकार के रूप में पत्रकारिता में अपनी पैठ जमा रही थीं।

कादंबरी ने 1998-1999 में एशियन ऐज में एक खेल पत्रकार के रूप में काम किया। एशियन ऐज में काम करने के बाद वह द पायनियर के साथ काम करने लगीं। यहां उन्होंने लैंगिक असमानता और विकास की बीट को संभाला। 1997 में कादंबरी इंटरनेट पर साप्ताहिक ब्लॉग लिखा करती थीं। यह ब्लॉग सर्फर्स डायरी नाम से प्रचलित था। यह भी माना जाता है कि यह ब्लॉग भारत का सबसे पहला साप्ताहिक ब्लॉग था। उसके बाद कादम्बरी ने 1999-2001 तक द इंडियन एक्सप्रेस में काम किया। 2001 में कादम्बरी ने हिंदुस्तान टाइम्स में काम किया। हिंदुस्तान टाइम्स के लिए वह एक खोजी खेल पत्रकार के रूप में काम करती थीं। इसके साथ ही आठ अलग-अलग देशों की क्रिकेट न्यूज को कवर करना उनके कार्यभार का हिस्सा था।

खेल पत्रकार के रूप में उन्होंने 2004 में पाकिस्तान की यात्रा की। उन्होंने इस दौरे पर लिखी गई किताब 'क्रिकेटिंग टाइस' में सह लेखक के रूप में योगदान दिया है। 2005 में वह हिंदुस्तान टाइम्स की खेल संपादक बनीं। उस समय उनकी उम्र केवल 29 वर्ष थी। 2007 में वह हिंदुस्तान टाइम्स के 85 साल के इतिहास में राष्ट्रीय खेल संपादक का पदभार संभालने वाली पहली महिला पत्रकार बनीं। इस उपलब्धि से पहले 2005 में उन्होंने स्पोर्ट्स जर्नलिज्म फेडरेशन ऑफ इंडिया के क्रिकेट का राइटर्स पुरस्कार जीता। वह दिल्ली में 2010 के राष्ट्रमंडल खेलों के दौरान महिलाओं और खेल की सलाहकार समिति का हिस्सा थीं। साथ ही फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री स्पोर्ट्स कमेटी की वर्तमान सदस्य हैं।

भारत में खेलों को एक त्योहार के रूप में देखा जाता रहा है, लेकिन जब बात खेलों में महिलाओं की करते हैं तो देखने को मिलता है कि अधिकांश भारतीयों को महिला खिलाड़ियों के नाम तक मालूम नहीं होते। ऐसे में एक महिला के रूप में खेल पत्रकारिता करना साहसी कदम था। महिलाओं को लेकर धारणा बनी हुई है कि महिलाएं खेल में ज्यादा दिलचस्पी नहीं रखती। लेकिन अब हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं जिसमें महिलाएं खेल में दिलचस्पी नहीं रखती जैसी दकियानूसी सोच को कूड़ेदान में फेंक देना चाहिए। इसी कड़ी में कादंबरी मुरली के जीवन को एक मिसाल के तौर पर देखा जाना चाहिए कि महिलाएं न सिर्फ किसी खेल का हिस्सा बन सकती हैं बल्कि खेलों को बारे में लिख एवं उनका विश्लेषण भी कर सकती हैं। कादंबरी को मिले पुरस्कार और उपलब्धि हर उस युवती को खेल जगत में पत्रकार या खिलाड़ी के रूप में प्रेरित करेंगे, जो महिला होने के कारण खुद को कम आंका करती थी।

शैली चोपड़ा

महिलाओं को विश्वास दिलाने का प्रयास

• मंटू

शैली चोपड़ा का जन्म पंजाब के जालंधर जिले में 21 जुलाई 1981 को हुआ था। शैली चोपड़ा ने अपनी स्कूली शिक्षा नई दिल्ली के वायु सेना स्वर्ण जयंती संस्थान से पूरी की। सन् 2002 में एशियन कॉलेज ऑफ जर्नलिज्म चेन्नई से प्रसारण और टेलीविजन में मास्टर डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात उन्होंने बीबीसी के साथ प्रशिक्षण लिया और वह सीएनबीसी, एनडीटीवी और ईटीनाउ के साथ भी जुड़ी रही हैं।

शैली चोपड़ा 'शी द पीपल' वेबसाइट की संस्थापक हैं। अप्रैल 2017 में उन्हें भारत में बियॉन्ड डायवर्सिटी फाउंडेशन द्वारा वुमन ऑफ इन्फ्लुएंस अवार्ड मिला। 'शी द पीपल' ने नारीवाद पर सर्वश्रेष्ठ अभियान का पुरस्कार जीता। उन्होंने वेब के लिए सार्थक सामग्री बनाने के लिए अपने समाचार कौशल का उपयोग किया। टेलीविजन में अपनी अंतिम भूमिका में वह ईटी नाउ और एनडीटीवी में वरिष्ठ संपादक और लीड एंकर रहीं। मार्च 2016 में शैली को इम्पैक्ट मैगजीन द्वारा मीडिया, मार्केटिंग और विज्ञापन में भारत की शीर्ष 50 सबसे प्रभावशाली महिलाओं में से एक घोषित किया गया था। शैली को पत्रकारिता में भारत का सर्वोच्च सम्मान, व्यावसायिक पत्रकारिता में श्रेष्ठता के लिए रामनाथ गोयनका पुरस्कार मिला। उन्होंने बेस्ट बिजनेस एंकर अवार्ड भी जीता और उसी वर्ष फिक्की ने उन्हें मीडिया में उनके योगदान के लिए यंग वुमन अचीवर अवार्ड दिया। उन्होंने 2007 में भारत में सर्वश्रेष्ठ रिपोर्टर के लिए न्यूज टेलीविजन अवार्ड भी जीता।

शैली ने एनडीटीवी के साथ मार्केट्स एंड कॉरपोरेट अफेयर्स एडिटर और एनडीटीवी प्रॉफिट में सीनियर न्यूज एडिटर-कॉर्पोरेट के रूप में पांच साल और फिर ईटी नाउ के साथ तीन साल तक काम किया। उन्होंने जी-20, डब्ल्यूईएफ, दावोस, द ब्रेटन वुड्स कॉन्फ्रेंस 2011, इंडिया इकोनॉमिक समिट और वर्ल्ड रिटेल कांग्रेस जैसे अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को भी कवर किया है। उन्होंने गोल्फ पर टी टाइम विद शैली नामक एक धारावाहिक भी किया था। शैली ने 26/11 के आतंकी हमले के दौरान मुंबई से लाइव रिपोर्टिंग की थी। इस दौरान शैली के पति शिवनाथ भी वहां पर लाइव रिपोर्टिंग कर रहे थे।

शैली चोपड़ा का मानना है कि महिलाओं को खुद को एक मौका लेना चाहिए और विश्वास के साथ जीना चाहिए। शी द पीपल वेबसाइट इसी लक्ष्य के साथ काम करती है। शी द पीपल टीवी पर विशेष कार्यक्रम के माध्यम से शैली आधुनिक भारतीय महिला के सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा करती हैं। जैसा कि शैली चोपड़ा अक्सर कहती हैं, 'महिलाएं अभी भी एक ऐसा समुदाय हैं जो मुख्यधारा में आने की प्रतीक्षा कर रही हैं और 'शी द पीपल' को उम्मीद है कि वह बदलाव लाएगा।'

अपनी इसी भूमिका का निर्वहन करने के साथ वह लगातार काम कर रही हैं। उन्हें उम्मीद है कि उनके और उनके जैसे तमाम लोगों द्वारा किए जा रहे काम से धीरे-धीरे ही सही समाज बदलेगा और महिलाओं को बराबरी का अधिकार मिलेगा। हालांकि कई मामलों में इस क्षेत्र में काम हुआ है, लेकिन जिस तेजी के साथ यह काम होना चाहिए था, शायद उसमें कमी रह गई है।

मेट्रो की सराहनीय पहल है रेनबो स्टेशन

• गीतू कत्याल

वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा, डिजिटलाइजेशन, आत्मनिर्भरता जैसे मुद्दों की दौड़ में ट्रांसजेंडर समुदाय हाशिए पर है। बड़ी-बड़ी इमारतों, बदलती तकनीक व दौड़ती सड़कों की चकाचौंध के पीछे ट्रांसजेंडर समाज छिपा हुआ है। उसके लिए समानता और सम्मान जैसे शब्द दबे हुए दिखते हैं। ऐसे में नोएडा मेट्रो रेल कॉर्पोरेशन ने एक सराहनीय कदम उठाते हुए नोएडा सेक्टर-50 के मेट्रो स्टेशन को ट्रांसजेंडर समाज को समर्पित किया है। एनएमआरसी ने स्टेशन का नाम रेनबो स्टेशन रखा है, जो समाज में उपस्थित सभी समुदायों के बीच एकजुटता और बराबरी प्रदर्शित करता है। एक्वा लाइन पर स्थित इस स्टेशन पर ट्रांसजेंडर समाज के लिए विशेष सुविधाएं व रोजगार के अवसर दिए गए हैं, जिससे उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके। प्राइड स्टेशन के बाहर और अंदर विभिन्न रंगों से रंगे हुए खंभे दिखते हैं। यह समानता प्रदर्शित करते हैं। स्टेशन पर टिकट काउंटर से हाउस कीपिंग स्टॉफ तक विभिन्न ट्रांसजेंडर कार्यरत हैं। रेनबो स्टेशन का मकसद समाज में समानता और सम्मान को बढ़ावा देना है, जिससे सभी समुदायों की तरह ट्रांसजेंडर समुदाय भी लोगों के बीच कंधे से कंधा मिला कर चल सकें।

शुरुआत से अब तक भारत ने बहुत से पिछड़े विचारों को पीछे छोड़ा है परंतु ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए लोगों के विचारों में कुछ खास परिवर्तन नहीं दिखता है। आज भी हमें आवागमन करते हुए ट्रांसजेंडर पैसे मांगते दिखते हैं। उनको लेकर लोगों के विचित्र बर्ताव को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। ट्रांसजेंडर सड़क पर मांगने के लिए क्यों मजबूर हैं? रोजगार न मिलने पर उनके पास क्या विकल्प उपलब्ध हैं? यही भारतीय समाज का सच्चा और कड़वा सच है कि हम सब उनकी इस परिस्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। आज भी अगर कोई ट्रांसजेंडर चौराहे से गुजरता है तो लोग उसके प्रति घृणा से देखते हैं। खुद को उनसे अलग महसूस करते हैं और करवाते भी हैं।

सुप्रीम कोर्ट ने ट्रांसजेंडर समाज को तीसरे लिंग का दर्जा दे दिया है। पर प्रश्न यह है कि क्या वास्तविकता में उन्हें समाज का हिस्सा माना जाता है?2011 की जनगणना के अनुसार भारत में लगभग 5 लाख ट्रांसजेंडर हैं, जिसमें से 30-35 हजार दिल्ली में निवास करते हैं। जनगणना के अनुसार भारत में शिक्षित लोगों की संख्या 74 फीसदी है जबकि शिक्षित ट्रांसजेंडर की संख्या केवल 46 फीसदी है। किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे जरूरी शिक्षा और रोजगार है। लेकिन आज भी कई दफ्तर और विद्यालयों के फॉर्म में लिंग के दो विकल्प होते हैं-स्त्री और पुरुष। अगर कोई विद्यालय ट्रांसजेंडर को पढ़ने की अनुमति दे भी दे तो अन्य विद्यार्थियों के माता-पिता को यह बात स्वीकार्य नहीं होती। नौकरी की बात आते ही उन्हें दूसरों से अलग देखा जाता है, जबकि एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति भी उतनी क्षमता रखता है जितना कोई और नागरिक। आज भी ट्रांसजेंडर समुदाय को लेकर लोगों के बीच गलत धारणाएं जीवित हैं। अगर किसी व्यक्ति या संस्थान द्वारा ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए कोई कदम उठाया भी जाता है तो समाज के व्यवहार के कारण वह पहल असफल हो जाती है। 2016 में ओडिसा की एक ट्रांसजेंडर रानी किरण को उबर द्वारा ड्राइवर बनने का मौका मिला। परंतु कुछ समय बाद ही लोगों का व्यवहार और प्रतिक्रिया देखते हुए रानी किरण ने नौकरी खुद ही छोड़ दी।

एनएमआरसी द्वारा निर्मित रेनबो स्टेशन एक पहल है परंतु ऐसी पहल का असर तब तक नहीं हो सकता जब तक समाज ट्रांसजेंडर समुदाय को स्वीकार न कर ले। उनके प्रति संवेदनशील न बने। उनको सम्मान और समानता से न देखे। हमें यह सोचना चाहिए कि सरकार के नियम और कानूनों का असर तब तक नहीं हो सकता जब तक नागरिक उसका पालन न करें। परिवर्तन समय का नियम है और समाज में ट्रांसजेंडर समुदाय के लिए परिवर्तन बहुत जरूरी है। परिवर्तन रवैये में, परिवर्तन विचारों में, परिवर्तन बर्ताव में हो तभी किए गए प्रयासों का असर होगा। हम सबको चाहिए कि हम रेनबो स्टेशन जैसे उदाहरण का सम्मान करें और खुद भी ऐसे कदम उठाएं। तब जाकर सभी समुदायों का विकास होगा और एक बेहतर समाज बनेगा।

एक समुदाय के अस्तित्व पर सवाल

• विकास त्रिपाठी

एक बंद कमरे की कल्पना कीजिए। इस कमरे को चारों तरफ से दीवारों ने घेर रखा है। रोशनी के आने-जाने का कोई रास्ता नहीं है। इस कमरे में अब स्वयं को रख कर देखिए। प्रकाश और साफ हवा के बगैर ज्यादा समय तक आप स्वयं को इस कमरे में नहीं रख पाएंगे। कमरे का तमस जल्द ही आपके मन और मस्तिष्क पर हावी हो जाएगा। आगे चलकर यह घुटन का रूप ले लेगा।

समाज समलैंगिक समुदाय के हर व्यक्ति को कुछ ऐसी ही स्थिति में छोड़ रहा है। समाज की 'सामान्य' माने जाने वाली व्यवस्था एलजीबीटीक्यू समुदाय के लोगों को घर के एक अंधेरे कोने में धकेलती है। इस कोने को चारों ओर से समाज नियमों और परंपराओं की बेड़ियों में बांध देता है। इससे निकलने का एकमात्र रास्ता है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को छुपाकर समाज के रंग-रूप में ढल जाए। भले ही ऐसा करने से व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर कितना ही दबाव क्यों न पड़े। समाज स्वयं को एकरूप बनाए रखने के लिए दूसरों से सामान्य होने की मांग करता रहा है। पर प्रकृति ने एकरूपता को कभी नहीं सराहा। प्रकृति की हर संरचना में कोई न कोई अंतर जरूर होता है। अक्सर समलैंगिक समुदाय के लोगों को यह ताने सहने पड़ते हैं कि उनकी प्रवृत्तियां प्राकृतिक नहीं हैं। प्रश्न उठाए जाते हैं कि वह संबंध जो प्रजनन नहीं करते प्राकृतिक कैसे हो सकते हैं। परंतु यहां पर मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देने वाला, क्योंकि आज अगर इस प्रश्न का उत्तर दे दिया गया तो यह सवाल सही साबित हो जाएगा। यह साबित हो जाएगा कि समाज के एक वर्ग को हमेशा अपने होने या न होने के लिए वैज्ञानिक तथ्यों का सहारा लेना पड़ेगा। क्या कभी किसी हेट्रोसेक्शुअल व्यक्ति से उसके हेट्रोसेक्शुअल होने का सबूत मांगा गया है? नहीं न। फिर यह सवाल समलैंगिक समुदाय से क्यों? केवल इसलिए क्योंकि यह समुदाय आपके सामाजिक ढांचे में नहीं बैठता। तब प्रश्न तो आपके सामाजिक ढांचे पर उठना चाहिए। ऐसी व्यवस्था को बनाया ही क्यों गया, जिसमें हर कोई अपना सम्मान जनक स्थान प्राप्त न कर सके।

जन्म के समय अपना सेक्शुअल ओरियंटेशन निर्धारित करना किसी के हाथ में नहीं होता। आकर्षण तो एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। इसके ऊपर किसी का नियंत्रण नहीं होता। ऐसे में किसी के अनुराग या विराग पर प्रश्न उठाने का हक समाज को किसने दिया। क्यों समाज एक व्यक्ति को जायज और दूसरे को नाजायज ठहराता है। समलैंगिक समुदाय के लोगों के साथ किए जाने वाला दुर्व्यवहार समुदाय के लोगों को अनेक प्रकार की परेशानियों में डालता है। अपमान और धिक्कार के डर से एक इंसान अपनी मानसिक परेशानियों में ही रह जाता है। उसे आगे बढ़ने का मौका ही नहीं मिलता। समाज का एक बड़ा तबका मानसिक तनाव और सामाजिक दबाव के तले दम तोड़ रहा है। इनको इन परेशानियों से बाहर लाने का एकमात्र उपाय इन्हें सामान्य मानवीय अधिकार देना है। इन अधिकारों को अक्सर लोग एलजीबीटीक्यू समुदाय के अधिकार मान लेते हैं। लेकिन सच तो यह है कि समलैंगिक समाज किसी विशेष अधिकार की मांग नहीं करता। सम्मान के साथ जीवन बिताने का अधिकार एक छोटी-सी मांग है। इन मांगों को पूरा करने का तरीका कतई राजनैतिक नहीं है बशर्ते इन्हें आगे लाने के लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

आज विश्व के जिस भी देश में एलजीबीटीक्यू समुदाय खुलकर सांस ले रहा है। वहां पर सरकारों ने एक कदम आगे बढ़ाया है जिससे कि समाज में बदलाव देखने को मिल रहा है। आज भी दुनिया के बड़े देशों में समलैंगिकता अपराध बनी हुई है। व्यक्ति की अस्मिता को ही अपराध बना दिया गया है। ऐसे में समलैंगिक समुदाय को अपने अधिकारों के लिए समाज की रूढ़िवादी ताकतों से खुलकर संघर्ष करना होगा। आज तक समलैंगिक लोग समाज से अपने अधिकारों की केवल मांग करते आए हैं, पर आगे की राह संघर्ष वाली होगी।

कभी जाकर देखो उन गलियों में!

• **निहारिका**

दो पल के लिए छोड़कर अपनी सुंदर चारदीवारी
जरा देख आओ वे गलियां
एक बार कर लो उन गलियों का रुख
पता चल जाएगा क्या होता है दुख
छोड़कर अपना मखमली बिस्तर
देख आओ उनके जीवन का स्तर
रोटी, कपड़ा, मकान ये जरूरतें तो होती हैं प्रमुख
सोचो उनके बारे में जिनके पास इनका भी नहीं सुख
ये तीज त्योहार सब बेकार हैं
जेब में एक पैसा नहीं और लालसाएं अपार हैं
वो बच्चा ईद पर कर रहा सवाल
मां, क्या इस बार एक नया जोड़ा होगा मुहाल
यह सवाल उस मां के दिल को बहुत कचोटता है
मन को बहुत दुख होता है जब यूं ही आशाएं लिए
थक कर वह बच्चा सो जाता है
यहां त्योहार खुशियां नहीं बोझ बन जाती हैं
दूसरे बच्चों के हाथ खिलौना देख
इनके हाथ खाली और आंखें भर जाती हैं
दीपावली पर अगर दीया पांच से सात रुपए हो जाए
तो लगता है बहुत महंगा
जरा सोचो कि बस इतने से ही
कैसे चलता होगा उनका धंधा
बारिश का मौसम उन्हें नहीं भाता
क्योंकि मकान कच्चा और छत टपकती है
बाहर की बारिश कम अंदर वाली ज्यादा सताती है
एक ही पुराना बिस्तर वह भी भीग जाता है
जब ठंडी शीतल लहर करती है प्रहार
बड़ी मुश्किल से सह पाते हैं उसको वार
सर्दी से हो जाता है बुरा हाल
आखिरी फटी चादर कब तक पाए संभाल
क्या होता है नया साल
अरे इनके यहां तो भोजन की भी है हड़ताल
जिनके घरों से बिजली भी हो नाराज
उनके लिए क्या नया साल क्या नया आगाज
दो पल के लिए छोड़कर अपनी सुंदर चारदीवारियां
जरा देख आओ वो गलियां
एक बार कर लो उन गलियों का रुख
पता चल जाएगा क्या होता है दुख।

हौसला

• **मीनाक्षी पंत**

रख तू अटूट हौसला
हर मुश्किल से लड़ जाएगा
जो डर गया इन चुनौतियों से
तो कैसे इस दुनिया से लड़ पाएगा
रख मन में हौसले का फितूर
नहीं होगी मंजिलें तेरी दूर
मन को कर ले इतना मजबूत
कि टूटे न कभी तेरी हिम्मत का जुनून
दुनिया तो है मतलबी
पर तू न कर किसी का बुरा कभी
सबके कर्मों का चक्र है
उन्हें खुद-ब-खुद मिल जाएगा
बस खुद न कर किसी का बुरा कभी
वरना तेरा खुदा भी तुझ से रूठ जाएगा
रख तू अटूट हौसला
हर मुश्किल से लड़ जाएगा।

रामलाल आनंद महाविद्यालय
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
बेनितो जुआरेज मार्ग, नई दिल्ली-110021